"जिनेन्द्र पूजन एक–अनुचिंतन"

लेखक

पं. रमेशचन्द्र बाँझल "शास्त्री"
प्राचार्य
सर हु. संस्कृत महाविद्यालय
जंवरीबाग नसिया, इंदौर

प्राक्कथन

पं. श्री नाथूलालजी साहब शास्त्री
संहिता सूरि प्रतिष्ठाचार्य
भू.पू. प्राचार्य सर हु. संस्कृत महाविद्यालय
जंवरीबाग नसिया, इंदौर

प्रकाशक

स्वाध्याय मंडल
रामाशाह दिगम्बर जैन मन्दिर मल्हारगंज
इंदौर ४५२००२

⊙ प्रथम आवृत्ति- ५०००

⊙ ३१ अक्टोबर १९९७

⊙ वी.नि.सं. २५२४

⊙ मूल्य- ५.०० पाँच रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान

- **श्री रामाशाह दिगम्बर जैन मन्दिर**
  मल्हारगंज इंदौर ४५२००२
- **श्री सोनेलालजी जैन**
  जे.के. गारमेन्ट्स
  २०/२१, सुभाष मार्केट (गली न. १)
  राजबाड़ा इंदौर (म.प्र.)
  फोन नं. ५४०३८१
- **श्री सुरेशचंद्र जैन**
  नवीन गारमेन्ट्स
  कृष्णदीप मार्केट ६/३-ए, इमली बाजार, इंदौर
- **श्री अजित कुमार सुरेशचंद्रजी तोतूका**
  सी-११५ सावित्री पथ, बापूनगर
  जयपुर (राजस्थान)
  फोन नं. ५१७४४७ घर, ५१२१३९ घर
- **श्री टीकमचंदजी पंचोली**
  C/o मे. पंचोली ब्रदर्स,
  ७५/२ सीतलामाता बाजार
  शेखावत मार्केट, इंदौर
  फोन नं. ४५४७६४ मार्केट ५१९३०५ घर

मुद्रक : अजमेरा प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
४७/५, सुदर्शन अपार्टमेंट, महेश नगर, इन्दौर

प्राक्कथन

श्री पं. रमेशचंद्रजी बाँझल ''शास्त्री'' द्वारा लिखित यह ''जिनेन्द्र पूजन एक-अचिंतन'' रचना श्रावक के देव पूजा आदि दैनिक षट् क्रियाओं को संपन्न करने हेतु प्रकाशित की जा रही है, जिसकी अत्यन्त आवश्यकता है। यद्यपि सैकड़ों पूजा पाठ की पुस्तकें दान दाताओं द्वारा प्रकाशित हो चुकी है। और हो रही है। परन्तु यह उन सबसे विशिष्ट एवं उपयोगी है। जिसमें पूजा संबंधी समस्त विषयों और प्रश्नों का समाधान है।

पूजा के विषय में आम्नाय भेद के सिवाय अनेक विधियाँ प्रचलित हैं जिससे क्रिया काण्ड में मतभेद होता रहता है और ठीक तौर पर निर्णय नहीं हो पाता है। इन विभिन्न मान्यताओं में शान्ति की प्राप्ति के उद्देश्य से की जाने वाली पूजा की क्रिया में विवेक जाग्रत करने का प्रयत्न करना चाहिए। मैं १९२७ से इस क्रिया काण्ड विभाग से संबंधित हूँ। प्रतिष्ठा में मंडल पर स्वयं बैठने एवं प्रतिमा आदि विराजमान करने में उन्हें कुछ भी संको ा नहीं होता था। मंडल पर चढीद्रव्य में लटें तक पड़ जाती थी। गृहस्थ भी मण्डल पर पैर रखकर अभिषेक करते थे। मण्डल का रंग, वस्त्र, रस्सी आदि सभी अशुद्ध है। लेखक ने मण्डलजी पर कुछ न चढ़ाने का जो लिखा है वह उचित है। पूजा विधान कराने वालों को आग्रह नहीं करना चाहिए एक मण्डल पर गोला चढ़ाने में ही उनकी प्रतिष्ठा है।

अर्हंत प्रतिमा का अभिषेक मूर्ति केमाध्यम से संकल्प रूप में होता है। संस्कृत में कर्मप्रबंधनिगडैरवि .... का ही भावानुरुद है- तुम तौ सहज पवित्र यही निश्चय मयो....... पापा चरण तज .... पर्शन करूँ......

इन पद्यों में मूर्ति शुद्धि एवं परिणामों की विशुद्धि का उद्देश्य है। अभिषेक का जल नेत्रों के ऊपरी ललाट पर लगाया जाता है।

निर्माल्य मंत्रपूर्वक अष्ट द्रव्य चढ़ाने से कहलाता हैं। यह अग्राह्य है इसलिए उधर लालसा न हो अतः प्रथक रखना योग्य है । पूज्यता का संबंध वहाँ नहीं है। यह चढ़ाया जाता है।

विद्वदजन बोधक पृ ३१३ पर षोडषकारण बंध के कारण है। इस प्रश्न का उत्तर दिया है जिन भावनाओं से तीर्थंकर होते हैं उनकी भक्ति भी राग है। अतः जब भक्ति पुण्यबंध का कारण है तो भावना भी पुण्यबंध का कारण है। श्रावक का वह नित्य कर्त्तव्य है। वह नव देवता में धर्म के अन्तर्गत धर्म संगृह श्रावका चार में बताया है।

नवगृह में रवि चंद्र आदि हैं जो ज्योतिष में बताये जाते हैं। जिनका उल्लेख जन्म पत्रिका आदि में रहता है। हमारी जिन धर्म में श्रद्धा बनी रहे इसलिए इन गृहों के वर्ण की समानता चौबीस तीर्थंकरों के शरीर वर्ण में देखकर उन नवगृहों को

चौबीस तीर्थंकरों की पूजा में सम्मिलित कर लिया गया है। पृथक नवगृहों का कोई संबंध नहीं है।

पूजन के पांच अंगों में विसर्जन भी है। इसे पूजा विधि का विसर्जन मानकर स्वीकार करना चाहिए। इसे विद्वदजनबोधक ने भी माना है। ''आहूता ये पुरादेव'' पद्य विसर्जन में अनुपयुक्त है। इस रचना के अंत में जो पूजाएँ रखी गई हैं। अष्ट कर्मों का क्रम विचारणीय है।

आशा है धर्म प्रेमी बंधु ऐसे आवश्यक एवं उपयोगी ग्रन्थ से जो परिश्रम से लिखा गया है लाभ उठाएंगे। इस के लिए सहयोग राशि प्रदान करने वाले उदार महानुभाव धन्यवाद के पात्र है।

पं. नाथूलाल जैन ''शास्त्री''
भू.पू. प्राचार्य सर हु. संस्कृत
महाविद्यालय जंवरीबाग
नसिया, इंदौर

प्रकाशकीय

प्रिय धर्मानुरागी भाई-बहनों श्री रामाशाह दिगम्बर जैन मन्दिर मल्हारगंज इन्दौर में चल रही धार्मिक गतिविधियों से आप परिचित है। पूर्व में मन्दिरजी से सल्लेखना एक अनुचिंतन एवं पुरुषार्थ सिद्धि उपाय प्रकाशित की जा चुकी है।

इस लोक प्रियता की श्रृंखला में मन्दिरजी से तृतीय पुष्प के रूप में आदरणीय पं. श्री रमेशचंद्रजी बाँझल शास्त्री द्वारा लिखित ''जिनेन्द्र पूजन एक अनुचिंतन'' प्रकाशन किया जा रहा है प्रस्तुत पुस्तक में जिनेन्द्र पूजन के संबंध में विशद रूप से विवेचन किया गया है, वैसे भी पूर्व में आपकी अन्य रचनायें पाप पुण्य और धर्म, आत्मा से परमात्मा, तत्वार्थ सूत्र टीका आदि ग्रन्थ प्रकाशित है, जिन दान दाताओं ने पुस्तक की कीमत कम करने में सहयोग दिया है हम उनके आभारी हैं। श्री जवरचंदजी बंडी एवं उनके परिवार द्वारा दिया गया सहयोग, अजमेरा प्रिन्टर्स एवं स्टेशनर्स के द्वारा पुस्तक प्रिन्टिंग में जो विशेष सहयोग दिया गया है तथा श्री सोनेलालजी, श्री सुरेशचंद्रजी, श्री टीकमचंदजी पंचोली एवं श्री अजित कुमारजी तोतूका इन सभी के हम आभारी हैं।

भवदीय
स्वाध्याय मंडल
रामाशाह दिगम्बर जैन मन्दिर मल्हारगंज, इंदौर (म.प्र.)

अपनी बात

पूजन की आवश्यकता तो सारा संसार मानता है । कोई ऐसा देश-काल-समाज नहीं हो सकता जहाँ पूजन की आवश्यकता न समझी जाती हो । यह संसार समुद्र से पार होने के लिए नौका/पुल, निःश्रेयस् पद की प्राप्ति के लिए संकेत एवं अनंत गुणात्मक आत्म वैभव को प्रकाशित करने के लिए ज्योतिर्मणि है ।

श्रावक के छः आवश्यकों में प्रथम आवश्यक साधन पूजन है । पूजक बने बिना पूज्य बनना असंभव है । पूज्य बनने की भावना से प्रेरित होकर मोक्षार्थियों के लिए मूल आम्नायानुसार "जिनेन्द्र पूजन एक अनुचिंन्तन" का प्रयास कर रहा हूं । आशा है भव्यों के मन को प्रतिबोध करायेगी ।

"जिनेन्द्र पूजन एक अनुचिंतन" के अन्त में आठ पूजाएँ हैं । जिसमें छः पूजाओं के अष्टकों में क्रमशः घातिया और अघातिया कर्मों के क्षय की दृष्टि है और अन्तिम दो पूजाओं में जन्म, जरा विनाश की दृष्टि है । दोनों का अभिप्राय एक ही है।

"जिनेन्द्र पूजन एक अनुचिंतन" में प्रयुक्त आर्ष ग्रन्थों के रचयिता सभी आचार्यों के चरण कमलों में कोटि-कोटि नमन । १०८ मुनिश्री निर्वाणसागरजी को पुनः प्रणाम करता हूँ जिनके आशीर्वाद से यह कार्य सम्पन्न हुआ तथा आदरणीय गुरुवर्य पं. श्री नाथुलालजी सा. का ऋणी हूँ जिनके सानिध्य में इस विषय का ज्ञानार्जन किया ।

अन्त में ग्रन्थ प्रकाशन संस्था एवं दान दाताओं का हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने **न्योछावर राशि पाँच रुपये** में वितरण करने का निश्चय किया ।

विज्ञजनों से निवेदन है कि हमें अपने सुझाव अवश्य भेजें ।

विनीत

रमेशचन्द जैन बाँझल

७४-ए छत्रपति नगर, इन्दौर

दानदाताओं की सूची

रकम	नाम
२५००/-	श्री गौरव तोतूका (सनी मेमोरियल ट्रस्ट हस्ते श्री अजित तोतूका (छाबड़ा), जयपुर
१५००/-	महिला मंडल रामाशाह दिगम्बर जैन मन्दिर, मल्हारगंज
१०५१/-	श्री रतनलालजी बुरहानपुर वाले
१०००/-	श्रीमती कमलाबाई शांतीलालजी नरसिंगपुरा
१००१/-	श्रीमती गुनियाबाई W/o श्री पूनमचंदजी गोधा, मल्हारगंज
१००१/-	श्रीमती शकुन्तलाबाई W/o श्री सोमागमलजी बक्षी
१०००/-	गुप्तदान हस्ते श्रीमती पुष्पा पाटोदी, मल्हारगंज
१००१/-	श्री राजकुमारजी लालन, महावीर बाग
१०००/-	श्री सुमतीलालजी चोपड़ा
१०००/-	श्रीमती कंचनबाई घासीलालजी बंसल
१०००/-	श्री भेरूलालजी कपूरचंदजी
१०००/-	श्री वर्धमान शाह
१०००/-	अप्सरा टी. कं.
१०००/-	पींकी ड्रेसेस
७०१/-	श्री दिगम्बर जैन नरसिंगपुरा महिला मंडल, माणकचौक
५५५/-	श्री चिन्द्रूपजी शाह, मुम्बई
५२१/-	श्री कुन्दनलालजी गोधा घी वाले, मल्हारगंज
५११/-	श्री लछीरामजी फूलचंदजी चौमूवाले हस्ते श्री अमर बड़जात्या, मल्हारगंज
५०१/-	महिला मंडल, रामाशाह मन्दिर हस्ते श्रीमती माणकबाई काला
५०१/-	श्री मनोहरलालजी काला, मल्हारगंज
५०१/-	श्रीमती बिमलाबाई W/o श्री बिमलचंदजी सोनी, मल्हारगंज
५०१/-	श्री कमल पाटोदी, मल्हारगंज
५०१/-	श्री सुरेशचंदजी पांड्या, रामचंद्रनगर
५०१/-	श्रीमती कंचनबाई रतनलालजी जैन हस्ते श्री मदनलालजी
५०१/-	A to Z किराना भंडार, नलिया बाखल
५०१/-	श्री मिश्रीलालजी अजमेरा, अजमेरा प्रिन्टर्स एण्ड स्टेसनर्स
५०१/-	श्री भगवतीलालजी उदयलालजी संघवी
५००/-	श्री लड्डूलालजी जैन, मालगंज
५००/-	श्री शांतीलालजी काला, पोहावाला, गोराकुण्ड
५००/-	श्रीमती शशी सेठी W/o श्री बिमलचंदजी सेठी, मल्हारगंज
५००/-	श्री शांतीलालजी जैन नरसिंगपुरा
५००/-	गुप्तदान हस्ते श्रीमती रानी पहाड़िया
५०१/-	गुप्तदान हस्ते श्री शंकरलालजी सोगानी
५०१/-	सतीश कैलेण्डर कं. हेमिल्टन रोड
५००/-	श्री सूरजमलजी बंडी, पलासिया
५००/-	श्री कांतीलालजी दाडमचंदजी
५००/-	श्रीमती शांतीसेठी W/o श्री मन्नालालजी सेठी, मल्हारगंज
५००/-	श्री ज्ञानचंदजी रामनिवासजी बड़जात्या चौमूवाले, मल्हारगंज
३०१/-	श्री शशीकान्तजी जैन
३००/-	श्री प्रकाशचंदजी रतनलालजी कासलीवाल, जैन कालोनी
३०१/-	श्री हीरालालजी बाकलीवाल मल्हारगंज

रकम	नाम
३०१/-	श्रीमती चंद्रावतीबाई गंगवाल रामचंद्रनगर
२५१/-	श्री पारसजी जैन, चिमनबाग
२०१/-	श्री माणकचंदजी गंगवाल, मल्हारगंज
२०१/-	श्रीमती सोहनबाई गदिया, मल्हारगंज
२०१/-	श्रीमती लीलाबाई डोसी, मल्हारगंज
२०५/-	श्री जंवरचंदजी बंडी, पलासिया
२०१/-	श्री नरेंद्रकुमारजी बड़जात्या, अंजनीनगर
२००/-	श्री दिलीप बाकलीवाल
२००/-	श्री रतनलालजी बज, कपड़ा मार्केट
२००/-	श्री श्रीचंदजी बंडी, राजबाड़ा
२००/-	श्री मोहनलालजी पंचोली
२००/-	श्रीमती सुलोचना W/o श्री तेजकुमारजी गंगवाल
१५२/-	श्री इन्दरचंदजी गंगवाल
१०१/-	श्री विमलचंदजी काला सुहागजनरल स्टोर्स, मल्हारगंज
१००/-	श्रीमती मंजूला निरंजन कुमार खासगीवाल
१०१/-	गुप्तदान हस्ते श्री संजय जैन
१०१/-	श्री जम्बूकुमारजी वेद, मल्हारगंज
१०१/-	श्री महेश जैन, महेश इलेक्ट्रिकल्स
१०१/-	श्री रितेश कुमार संतोषचंद्र महेश्वर
१०१/-	गुप्तदान हस्ते श्री प्रकाश जैन बड़वाली चौकी
१०१/-	श्री तिलोकचंदजी जैन मास्टर सा.
१०१/-	गुप्तदान- श्रीमती किरण जैन, जिंसी
१००/-	श्रीमती अनोपबाई सेठी, मल्हारगंज
१०१/-	श्री टीकमचंदजी पंचोली, शेखावत मार्केट
१०१/-	श्रीमती सुलोचना नरसिंगपुरा
१०१/-	श्रीमती सुधा गंगवाल, मल्हारगंज
१००/-	श्री विशाल जैन
१०१/-	श्रीमती प्रेमबाई W/o श्री छोटेलालजी जैन
१०१/-	श्रीमती प्रेमलता पहाड़िया, जिंसी
१००/-	श्री राजेंद्र सेठी, कलमेर वाले
१०१/-	श्री रमेश जैन, मालवामील
१०१/-	श्री मांगीलालजी जैन, मालवामील
१०१/-	श्री जम्बूकुमारजी जैन, इमलीबाजार
१०१/-	श्रीमती कमलाबाई रामदयालजी नार्थ राजमोहल्ला
१०१/-	श्रीमती मंजू W/o श्री सुरेशचंदजी जैन, मल्हारगंज
१००/-	गुप्तदान हस्ते श्री संजय मोदी, मल्हारगंज
१००/-	श्रीमती विनोद बहन नरसिंगपुरा, मारवाड़ी मंदिर, गौराकुण्ड
१०२/-	श्री मोहनलालजी नरसिंगपुरा, इमलीबाजार
५१/-	श्रीमती सोहनबाई जैन
५०/-	श्रीमती गिन्नीबाई मल्हारगंज
५१/-	श्रीमती सुलोचना बड़जात्या माचवाला
५१/-	गुप्तदान-लश्करी मन्दिर, गौराकुण्ड
५०/-	श्रीमती कमलाबाई जैन, जिंसी
२७५/-	श्री दिगम्बर जैन मारवाड़ी मन्दिर, शक्कर बाजार, महिला मंडल
३५०१९/-	

अनुक्रमणिका

जिनपूजन के भाव से, विषय लालसा मंद।
स्व-पर भेद विज्ञान हो, नशे चतुर्गति फंद॥

तीन लोक के जीव सुख चाहते हैं और दुःख से भयभीत हैं।[१] प्रत्येक जीव सुखी होने का उपाय करता है, किन्तु सुख का स्वरूप ज्ञात न होने से उसके उपाय मिथ्या होते हैं और दुःख को ही पाता है।

गृहस्थ जीवन में निरन्तर सदोष प्रवृत्तियाँ होती रहती हैं। इसके द्वारा मात्र पाप का ही बंध होता रहता है, धर्म/हित की प्राप्ति नहीं होती है। आत्मा का हित सुख है। जो कि रत्नत्रय स्वरूप मोक्ष मार्ग में है। इसलिए निराकुल सुख के अभिलाषी जीवों को मोक्ष मार्ग का स्वरूप समझकर उसमें लीन होना चाहिए।[२] मोक्ष पथ का पथिक श्रमण कहलाता है। उसका आचरण पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, छः आवश्यक, दश लक्षण धर्म, द्वादश अनुप्रेक्षा, बाईस परिषह जय रूप होता है। जिसे श्रमणाचार/मुन्याचार कहा जाता है। आगम में जिस प्रकार का आचरण श्रमणों का कहा है, उस प्रकार का आचरण श्रावकों को अपनी पदवी और शक्ति को भले प्रकार विचार कर निरन्तर सेवन करना योग्य है।[३] श्रमण अपने उग्र पुरुषार्थ द्वारा आत्मलीनता को बढ़ाते हुए पूर्ण सुखी हो जाते हैं तथा श्रावक उस मार्ग का आंशिक पालन करता हुआ आंशिक सुखी हो जाता है।

सुख की प्राप्ति का प्राथमिक साधन/कर्म जिनेन्द्र पूजा है। इसलिए गृहस्थों को अशुभ दोष निवारण कर शुभ की भूमिका

में शुद्धभाव की वृद्धि के लिए देव पूजा करने का उपदेश दिया जाता है।

पूजन में पँच परमेष्ठी, जिन-धर्म, जिन वाणी, जिन प्रतिमा और जिन मंदिर की पूजा की जाती है। उन्हें नवदेव भी कहते हैं। अर्हंत, सिद्ध की प्रतिमा पाषाण/सर्वधातु की प्रतिष्ठित करवा कर उन प्रतिमाओं के माध्यम से प्रतिमित के गुणों की पूजा/आराधना/उपासना/भक्ति/वंदना की जाती है। पूजा में धर्म प्रभावना/श्रुत का प्रचार-प्रसार/स्वाध्याय मंदिर/प्रतिमाओं का निर्माण और पँच कल्याणक प्रतिष्ठा आदि कार्य सम्मिलित हैं। चित्राम, प्लास्टिक, मिट्टी, काष्ठ आदि की प्रतिमाएँ पूज्य नहीं हैं।

पूजा का शाब्दिक अर्थ - पूजा का शाब्दिक अर्थ (पूज् + ल्युट) 'पूज्' धातु से निष्पन्न है। 'पूज्' धातु के पवित्र करना, प्रक्षाल करना, श्रद्धा करना पृथक् करना, निथारना, फटकना परिमार्जन करना, पहचानना, सोचना, विवेक करना, उपाय ढूंढना, आविष्कार करना, प्रायश्चित् करना, अर्चा, सम्मान, प्रतिष्ठा, भेंट चढ़ाना, आराधना, उपासना आदि अनेक अर्थ हैं। जो पूजा नाम की सार्थकता सिद्ध करते हैं।

पूजक प्रमाद और कषाय भावों से अपवित्र है। अपवित्र को पवित्र करने की आध्यात्मिक प्रक्रिया का नाम पूजा है। पूजा- कषाय एवं कर्ममल धोने को जल है। पर भावों में मिली हुई आत्म परिणति को छानने के लिए छन्ना है। विकारी भावों में परिणित होते हुए भी अविकारी आत्म स्वभाव के श्रद्धान के

लिए कंचन है। अपने को चेतन-अचेतन समस्त पर द्रव्यों एवं पर भावों से पृथक् करने के लिए निर्मली फल है। मोह आदि पर भावों से स्व को निथारने के लिए उत्तम पात्र है। प्रयोजनीय और अप्रयोजनीय मिश्र तत्वों को फटककर जीवादि प्रयोजनभूत तत्वों को ग्रहण के लिए सूप है। रागादि विकार क्षय कर वीतरागता की पुष्टि के लिए अद्वितीय रस है। पर भावों से भिन्न आदि अंत रहित निर्विकार विज्ञान घन चिदानंद चैतन्य निज परमात्मत्व को समझने का अनुपम उपाय है। आत्म स्वरूप सोचने-विचारने का सुलभ साधन है। संसार से भिन्न मोक्ष स्वरूप का ज्ञान करने की उत्तम कला है। जीव-अजीव तत्व संबंधी भूल सुधारने का उपाय है। पुण्य-पाप, अथवा मोह-क्षोभ परिणामों से निज को भिन्न करने का अनुपम आविष्कार है। आत्म के गुण दोषों को समझकर दोषों को पृथक् करने एवं उनका प्रायश्चित् करने की उत्कृष्ट विधि है।

पूजा के नाम- पूजा का अर्थ, पूजन, पूजना, सम्मान करना, आदर करना, आराधना करना, उपासना करना, ध्यान करना, स्वाध्याय करना है। तथा पूजा के एकार्थवाची नाम हैं- याग, यज्ञ क्रतु, पूजा, सपर्या इज्या, अध्वर, मख, मह है।[४]

पूजन की परम्परा- जैन दर्शन में आत्मा की पूर्ण शुद्ध अवस्था को परमात्मा स्वीकार किया गया है। पूजन/स्तुति / वंदना के योग्य शुद्ध परमात्मा हैं। आत्मा अशुद्ध अवस्था से अवस्थान्तरित होकर शुद्ध अवस्था रूप परमात्मा बनता है। अर्हंत सिद्ध आचार्य, उपाध्याय और सधु ये पाँच अवस्थाएँ

आत्मा की ही हैं ।[५] इसलिए पँच परमेष्ठी पूज्य हैं । परमेष्ठियों की पूजा व्यक्ति पूजा नहीं है अपितु गुणों की पूजा है । जैन दर्शन में गुणों को पूज्यपना है किसी व्यक्ति को नहीं । कार्य परमात्मा के गुणों का स्तवन पूजन करने से निज कारण परमात्म स्वभाव का पूजन स्वयमेव हो जाता है । अतः जब से आत्मा है, तभी से पँच परमेष्ठी है और जब से पँच परमेष्ठी हैं तभी से उन जैसे गुणों को अपने में प्रगट करने हेतु उनके गुणों की पूजन करने की परम्परा वर्त रही है । अतः आत्मा अनादि से है इसलिए जिन पूजन की परंपरा अनादि से है और अनंतकाल तक रहेगी ।

जैन दर्शन में वीतराग मूर्ति के माध्यम से मूर्तिमान की पूजा करने का प्रचलन पूर्ववर्ती जैनेतर राजाओं द्वारा भी किया जाता रहा है । सम्राट खारवेल के शिलालेख में कलिंग पर चढ़ाई करके नंद द्वारा अग्रजिन (आदिनाथ) की मूर्त को ले जाने का और मगध पर चढ़ाई करके खारवेल के द्वारा उसे प्रत्यावर्तन करके लाने का उल्लेख मिलता है । इससे सिद्ध होता है कि आज से २५०० वर्ष पूर्व जैनेतर राजाओं द्वारा भी आदि तीर्थंकर ऋषभ देव की पूजा होती थी । स्वामी दयानंद सरस्वती तो जैनों से ही मूर्ति पूजा का प्रचलन मानते हैं ।[६]

वैदिक काल में मूर्ति पूजा नहीं थी यज्ञ करने की परम्परा थी । जब ब्रह्मवादी विचारधारा के प्रभाव से यज्ञ परम्परा लुप्त होने लगी तब वैदिक संस्कृतियों ने श्रमण संस्कृतियों में प्रचलित मूर्ति पूजा का अनुकरण कर लिया । भरत चक्रवर्ती ने कैलाश

पर्वत पर ७२ जिनालयों का निर्माण किया ऐसा उल्लेख आगम में मिलता है।

वर्तमान में जिनेन्द्र पूजा विधि की जो परम्परा वर्त रही है वह सम्भवतः तिल्लोय पण्णत्ती के आधार पर है। आचार्य ने नंदीश्वर आदि अकृत्रिम चैत्यालयों में इंद्रों द्वारा की जाने वाली पूजन विधि का अनुकरण किया है।[*] अकृत्रिम चैत्य चैत्यालय अनादि निधन हैं। देवगण अनादि से अर्हंत सिद्ध आदि के गुणों की पूजा करते हैं। उनकी विधि का अनुकरण ही गृहस्थ करते हैं। स्थापना निक्षेप के आधार पर मंदिर, वेदी पूज्य, पूजक एवं पूजा द्रव्य सभी संकल्पित हैं। पूजक मंदिर को समवशरण वेदी को गंध कुटी, पाषाण एवं सर्व धातु की प्रतिमा को सर्वज्ञदेव तथा अपने को पूजक अथवा इंद्र मानकर पूजा करता है।

मूर्ति के माध्यम से मूर्तिमान की पूजा करना अन्य संस्कृति का अनुकरण नहीं है। अपितु जैन संस्कृति का अनुकरण अन्य संस्कृतिकारों ने किया है। जैन संस्कृति में तीन लोकों में अकृत्रिम चैत्य एवं चैत्यालय हैं। इंद्रादि उनकी पूजा करते हैं। उनकी विधि का अनुकरण गृहस्थ करते हैं। स्थापना निक्षेप के आधार पर मंदिर, वेदी, पूज्य, पूजक एवं पूजा द्रव्य सभी संकल्पित उपमित हैं। पूजक मंदिर को समवसरण वेदी को गंध कुटी पाषाण व सर्व धातु की प्रतिमा को सर्वज्ञ देव मानकर पूजा करता है। किन्तु इतर दर्शन में अकृत्रिम कुछ भी स्वीकार नहीं किया गया है। इतर दर्शनकारों ने जैन पूजन विधि को परिवर्तित कर स्वीकार किया है। तथा कतिपय जिन पूजनकारों ने भी इतर संस्कृतियों

में वर्तित पूजन विधि की विकृतियों को रूपान्तर कर जिन पूजन विधि में अपना लिया है । जैसे चरणामृत पान के स्थान पर गंधोदक पीना, प्रभावना के नाम पर प्रसाद/मिष्ठान वितरण करना, फलों के नाम पर हरितकाय चढ़ाना। धन अर्जन के लिए मंडल पर द्रव्य चढ़ाना/प्रतीक स्थापित करना, बैठकर पूजन करना, फिल्मी धुनों में पूजन करना आदि इस प्रकार की अनेक विसंगतियों को देखकर जिन पूजन विधि को इतर संस्कृति की नकल कहना अनुचित है।

उपर्युक्त प्रमाणों से सुस्पष्ट है कि जैन पूजन विधि की परम्परा अनादि कालीन है। इसे अर्वाचीन कहना न्याय संगत नहीं है।

पूजन की आवश्यकता - लौकिक जीवन में शरीर को स्वस्थ रखने के लिए उत्तम भोजन की मस्तिष्क को स्वस्थ रखने के लिए उत्तम साहित्य की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार गृहस्थ जीवन को स्वस्थ रखने के लिए जिनेन्द्र पूजन की आवश्यकता है।

वर्तमान में मनुष्य का चित्त विषय-कषायों से रंजित हो अत्यन्त मलिन हो रहा है। उसे अपने सहज स्वभाव की प्रतीति नहीं है। निज स्वरूप की प्रतीति एवं प्राप्ति के लिए सहज शुद्ध स्वरूप को प्राप्त हुए कार्य परमात्मा का पूजन/स्तवन करना आवश्यक है। मनुष्य की मानसिकता होती है कि जिसके पुनः पुनः गुणगान करे/अवलोकन करे वह उन जैसे गुणों को अपने में प्रगट करना चाहता है। पूजक से पूज्य बनने के लिए स्वयं को उस योग्य बनाता है। अपने जीवन को उस साँचे में ढालता

है, जिस साँचे में पूज्य का जीवन ढला था। अतः निज के हितार्थ अविकल अविरल बढ़ने के लिए मुक्त स्वरूप पूज्य परमात्माओं की पूजा करना आवश्यक है। जो गृहस्थ जिनेन्द्र, पूजन किये बिना ही भोजन आदि अन्य कार्यों को करता है यह अनुचित है।[८] तथा उसके व्रतादिका पालन श्रुत का अभ्यास आदि शुभ कार्यों का करना भी निष्फल है।[९]

इससे स्पष्ट है कि श्रावक का प्रथम कर्म देव-शास्त्र-गुरु की पूजा करने का है। उसे अवश्य करना चाहिए। उसे शिथिल करना योग्य नहीं है।[१०]

उद्देश्य- जिस प्रकार मनुष्य जीवन के लौकिक और पारलौकिक दो उद्देश्य होते हैं। उसी प्रकार गृहस्थ जीवन में जिनेन्द्र पूजन करने के आत्मार्थिक और आध्यात्मार्थिक/ पारमार्थिक दो उद्देश्य होते हैं।

मनुष्य जिनेन्द्र पूजन आत्म शान्ति और आध्यात्मिक उन्नति के उद्देश्य से करता है। उद्देश्य की पूर्णता हेतु पूजक संवेग एवं वैराग्य मयी भावों के द्वारा अपने सहज स्वभाव में स्थिर रहकर भव से पार होना चाहता है।[११] पूजक आत्म विशुद्धि की भावना से कार्य परमात्माओं के गुणानुवाद कर अपने में सम्याग्दर्शन ज्ञान एवं चरित्र प्रगट करना चाहता है।[१२] वह पूज्य परमात्मा के समान बनने की भावना से गुणानुवाद करता है।[१३]

भगवान जिनेन्द्र की पूजन करने में पूजक का उद्देश्य कर्म के बंध का नहीं अपितु सर्व कर्मों के क्षय करने का है। पूजन की पीठिका में पूजक प्रतिज्ञा करता है कि मैं केवल ज्ञान रूपी अग्नि

में अपना सम्पूर्ण पुण्य जलाता हूँ।[१४] पूजन के प्रत्येक अष्टक में कर्म क्षय का अभिप्राय प्रस्फुरित हो रहा है तथा अभिषेक के अंत में भी सकल कर्म क्षय की भावना व्यक्त की गई है। कायोत्सर्ग में भी सर्व कर्मों के क्षय करने की अभिलाषा व्यक्त की गई है।

पूजक पूजा के माध्यम से आत्म विशुद्धि पूर्वक परमात्मत्व की ओर अग्रसर होना चाहता है। वह अष्ट कर्मों का क्षय कर सहज शुद्ध स्वभाव प्रगट करने एवं भव से पार होने के लिए जिनेन्द्र की पूजन करता है। यद्यपि अर्हतादिक की भक्ति से पूण्य का ही बंध होता है कर्मों का क्षय नहीं होता है। किन्तु भक्त तो पूजन में पूज्य के गुणों को आदर्श मानकर उन जैसे गुणों को अपने में प्रगट करना चाहता है। इसलिए पूजन का उद्देश्य पुण्य अर्जन/बंध नहीं अपितु अपने में धर्म प्रगट करना है। पूजन के अष्टक के मंत्र से सिद्ध होता है कि पूजक अष्ट कर्मों का क्षय करना चाहता है। लौकिक कोई भी उद्देश्य नहीं है। लौकिक उद्देश्य तीव्रकषाय होने से पाप बंध का ही कारण होता है। पूजन करने में यह बात अवश्य है कि मन वचन काय द्वारा कार्य परमात्मा के प्रति अनुराग/भक्ति/बड़प्पन है वह तो पुण्य बंध का कारण है। उसी समय जितने अंशों में उपयोग निज स्वभाव में रहता है उतने अंशों में संवर निर्जरा है, मोक्ष का कारण है। जो पूजक इस उद्देश्य को समझे बिना जिनेन्द्र पूजन करते हैं वे अतीन्द्रिय आत्मानंद से वंचित रहते हैं।

पूजन का उद्देश्य यही है चित स्वभाव में रम जाना।
शुद्ध स्वरूपाचरण बढ़ाकर, निज स्वभाव में रम जाना॥

पूजक जिनेन्द्र परमात्मा की पूजन से इन्द्रिय विषय नहीं अतीन्द्रिय आनंद, द्रव्य का संग्रह नहीं विग्रह, जन मन कल रंजन नहीं निरंजन होने का उद्देश्य रखता है।

पूज्य देव का स्वरूप- पूज्य का अर्थ पूजने योग्य है और देव शब्द 'दिव' धातु से निष्पन्न है। एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। यहाँ प्रयोजनीय अर्थ देने वाला अतिशय सम्पन्न है। यहाँ 'देव' शब्द सामान्य संज्ञा है जिसका अर्थ है - क्रीडा, रति विजिगीषा, द्युति, स्तुति, प्रमोद, गति, कान्ति इत्यादि क्रियाओं को करे उसे देव कहते हैं। जो स्वात्म जनित परम सुख में क्रीडा करता है, कर्म कलंक को धोने रूप विजिगीषा, स्वात्म जनित प्रकाश रूप द्युति, स्वस्वरूप की स्तुति, स्वरूप में परम प्रमोद, लोकोलोक विख्यात रूप गति, शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति रूप कान्ति सर्व देश पाई जाने से सर्वोत्कृष्ट देव पना है।[१५] यहाँ कर्मों पर जय कर आत्म सुख में लीन रहना प्रयोजनीय है। अतः वीतराग सर्वज्ञ देव ही सच्चे देव हैं। पूज्य हैं तथा भावी नैगम नय की अपेक्षा साधु परमेष्ठी भी देव हैं। देव की वाणी और उनके स्थान मन्दिर को भी उपचार से देव कहा जाता है। रागी द्वेषी देवों से पृथक बताने के लिए "सच्चे" विशेषण का प्रयोग किया जाता है। अथवा ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों के क्षय से अनंत चतुष्टय से सम्पन्न आत्मा को देव कहा है।[१६] वह देव शुद्ध उबलब्धि रूप द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा एक प्रकार का है। किन्तु पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से दो प्रकार का है - अर्हंत और सिद्ध।[१७]

अथवा जिनके निमित्त से ज्ञानात्मक धन की प्राप्ति होती है

उसे देव कहते हैं। जिनेन्द्र परमात्मा को देव कहना लौकिक व्यवहार है। आगम में जिनेन्द्र को आप्त कहा गया है और वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी, अविसंवादक, सत्यार्थ निरूपक को आप्त कहा गया है। आप्त को परमेष्ठी, परमज्योति, विराग, विमल कृती, सर्वज्ञ, अनादि, मध्यान्त, सार्व कहते हैं।[१८]

पूज्य का स्वरूप - मोक्ष मार्ग में पूजा के योग्य रत्नत्रय धारी वीतराग देव शास्त्र और गुरु होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई पूज्य नहीं होता है। क्योंकि सम्यग्दर्शन सहित चारित्र पूज्य होता है केवल सम्यग्दर्शन और ज्ञान पूज्य नहीं है। यदि सम्यग्दर्शन पूज्य हो तो सर्वर्थसिद्धि के देव सौधर्म इन्द्र आदि सभी पूज्य हो जाते। अतः स्पष्ट है कि सम्यग्दर्शन होने पर भी चारित्र रहित पूज्य नहीं होता है। वीतराग के समक्ष में चारित्र रहित का सम्मान करना, अर्घ्य चढ़ाना, जयकार करना अनुचित है एवं वीतरागी का अनादर करने का पाप बंध है।

शासन देवी देवता, कुल देवी-देवता, ग्रह नक्षत्र आदि देव गति के देव पूज्य नहीं होते हैं। क्योंकि उन्हें वीतराग चारित्र नहीं होता है। देवों को तीर्थंकर के समवशरण में उपस्थित या वहाँ नियुक्त होने से पूज्यता नहीं आती है। समवशरण में चार प्रकार के देव रहते हैं, वे अपने यथा स्थान बैठकर दिव्य ध्वनि श्रवण करते हैं। देव गण किसी से भी अपनी पूजा नहीं कराते हैं। वे तो स्वयं ही जिनेन्द्र परमात्मा की पूजा करते हैं। जो स्वयं जिनेन्द्र का पूजक हो वह उन पूज्य के सम्मुख अपनी पूजा कैसे करा सकता है। कदापि नहीं। जो अबोध वश देवी-

देवताओं की पूजा करते हैं उन भोले पूजकों को देख कर देवों को तरस आता होगा। वे सोचते होंगे देखो अज्ञान का प्रभाव हम देव गण जिनेश्वर की पूजा करते हैं और मनुष्य पूज्य जिनेन्द्र को छोड़कर उनके पूजकों की पूजा करने लगा है। उनका अभी वश नहीं चलता है यदि वश चलता तो वे धर्मान्ध भोले श्रद्धालुओं को अवश्य समझाते कि तुम लोग हम से महान हो, तुम व्रती बन कर कल्याण कर सकते हो। तुम्हें वीतराग जिनेन्द्र की ही पूजा करनी चाहिए अन्य किसी की नहीं। त्रिलोकीनाथ के सम्मुख क्षेत्रपाल, पदमावती, मानभद्र आदि की पूजा करना अन्यथा श्रद्धा का उदय/परिचायक है।

पँच कल्याणक प्रतिष्ठा में भी देव गति के किसी भी देव की पूजा नहीं की जाती है। याग मण्डल विधान में तीर्थंकर और साधुओं के गुणों की पूजा की जाती है। गर्भ जन्म एवं दीक्षा कल्याणक में गर्भ जन्म एवं दीक्षा की पूजा नहीं की जाती है - अपितु जिन्हें पुनः गर्भ, जन्म और दीक्षा धारण नहीं करना है ऐसे गर्भ जन्म और दीक्षा से सुशोभित तीर्थंकर परमात्मा की पूजा की जाती है। तीन कल्याणकों की पूजा में द्रव्य निक्षेपण के समय मंत्र के साथ गर्भ/जन्म/दीक्षा से सुशोभित उच्चारण किया जाता है। ज्ञान कल्याणक और मोक्ष कल्याणक में ज्ञान और मोक्ष से मंडित/प्राप्त बोलकर द्रव्य निक्षेपण किया जाता है।

पंच कल्याणक प्रतिष्ठा में तीर्थंकरों के माता-पिता की न पूजा की जाती है और न अभिनयार्थ बनाया जाता है। आगम में तीर्थंकर और उनके माता-पिता धारणीय भेष नहीं है। सामान्य

स्त्री में रजस्वला होना, निहार होना आदि दोष पाए जाते हैं। प्रतिष्ठा सम्पादन में संकल्पी/उपमित पात्रों को ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया जाता है। ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करने के पश्चात् वह माता कैसे बन सकती है। अर्थात् नहीं बन सकती है। तथा माता गृहस्थ होती है गृहस्थ की पूजा नहीं होती है। इसलिए प्रतिष्ठा में तीर्थंकर के माता-पिता की पूजा करना अबोधपन है। पूजा योग्य मात्र जिनेन्द्र परमात्मा होते हैं। इन बातों को ध्यान में रखकर प्रतिष्ठाचार्य गर्भ जन्म और दीक्षा कल्याणक में यंत्र/प्रतिष्ठित प्रतिमा के सम्मुख तीर्थंकत्व को प्राप्त वीतराग जिनेन्द्र परमात्मा की पूजा करते हैं।

प्रतिष्ठा प्रारम्भ के समय ध्वजदण्ड आरोपण के समय यंत्रजी के सम्मुख पंच परमेष्ठी की पूजन की जाती है। वह भूमि पूजन नहीं है। भूमि पूजन करना अन्यथा श्रद्धा है।

चौंसठ ऋद्धि विधान में ऋद्धिधारी मुनियों की पूजा की जाती है। केवल ज्ञानऋद्धि को छोड़कर शेष ऋद्धियों की पूजा नहीं की जाती है। सोलह कारण पूजन में भी सोलह कारणों की पूजा नहीं है अपितु उन भावनाओं को भाने वाले सभी तीर्थंकरों की पूजा की जाती है। सोलह कारण पूजन की जयमाला में सोलह भावनाओं की नहीं भावना भाने वालों की स्तुति गायी गई है। ये भावनाएँ तीर्थंकर प्रकृति के बंध का कारण है। बंध के कारणों की पूजा नहीं होती है, पूजा तो अबंध स्वरूप की होती है।

सिद्ध क्षेत्र/तीर्थ क्षेत्र की पूजा में उस क्षेत्र की पूजा नहीं की

जाती है। उस क्षेत्र पर होने वाले कल्याणक से सुशोभित / मण्डित तीर्थंकरों की पूजा की जाती है। यद्यपि पूजा में क्षेत्र का वर्णन किया जाता है किन्तु वह जिनेन्द्र के गुणों की ही महिमा है। जैसे लोक में राज्य की महिमा से राजा की महिमा गायी जाती है।

जैनागम में पूज्यपना सम्यग्दर्शन सहित चारित्र को है। सम्यग्दर्शन अथवा सम्यग्ज्ञान को स्वतंत्र रूप से पूज्य नहीं कहा है। रत्नत्रय की पूजा में सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और चारित्र की युगपद पूजा है स्वतंत्र नहीं। पूजन करने में दशलक्षण की पूजन की भांति क्रम अवश्य है। दश लक्षण में उत्तम क्षमा आदि दश लक्षण हैं किन्तु धर्म दश नहीं है। पूजन करने में क्षमा धर्म की आदि का क्रम है। उसी प्रकार रत्नत्रय धर्म में पूजा धर्म की है सम्यग्दर्शन आदि का क्रम है। इसलिए रत्नत्रय सम्पन्न देव ही पूज्य होते हैं। चारित्र विहीन सम्यग्दृष्टि पूज्य नहीं होता है। इसलिए इन्द्र आदि देव पूज्य नहीं होते हैं। उन्हें सम्यग्दर्शन है सम्यग्ज्ञान है किन्तु सम्यग्चारित्र नहीं है। जब सर्वार्थसिद्धि के देव ही पूज्य नहीं है तब फिर व्यन्तर आदि देव पूज्य कैसे हो सकते हैं। जिनेन्द्र का पूजक रत्नत्रय सम्पन्न जीवों की अर्थात् पँच परमेष्ठियों की ही पूजन करता है अविरति सम्यग्दृष्टियों की नहीं। तथा क्षेत्रपाल आदि शासन देवों की भी पूजा नहीं करता है। क्योंकि वे असंयमी, संसारी हैं। इनकी पूजा करना अन्यथा श्रद्धा का द्योतक है। जिन धर्म रूप शासन के नायक स्वयं जिनेन्द्र देव ही हैं। अतः जिनेन्द्र के सम्मुख देव गति के देवों की, लौकिक गुरु की पूजा करना, अर्घ्य चढ़ाना जिनेन्द्र का

अविनय है और पूजक अन्यथा श्रद्धानी है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि जिनेन्द्र की प्रतिमा को सरागी बनाकर पूजा करने से अन्यथा श्रद्धा का ही पोषण होता है।

अर्हंत (अर्ह+शतृ) अर्हंत शब्द "अर्ह" धातु से बना है। जिसका अर्थ पूज्य, स्तुत्य, आराध्य है। पूजा के महत्व से जो नमस्कार करने योग्य पूज्य देवोत्तम है वे अर्हंत हैं।[१९] अथवा वंदना, नमस्कार, पूजा, सत्कार और मोक्ष जाने योग्य हैं वे अरहंत हैं।[२०] अथवा अरि=शत्रु, हंत हनन करना। अर्थात् जो कर्म शत्रुओं का क्षय करने हेतु गृहस्थ पना त्याग कर मुनि धर्म अंगीकार करके निज स्वभाव साधन द्वारा चार धातिया कर्मों का क्षय करके केवल ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण पदार्थों को जानते हैं।[२१] अर्थात् तेरह वे और चौदह वे गुणस्थान वर्ती अर्हंत कहलाते हैं। वे अन्तरंग में अनंत चतुष्टय रूप अपने अविकारी अविनाशी परमात्म स्वरूप में विराजते हैं। और बाह्य में सौ इन्द्रों से पूज्य समवशरण के मध्य में तीन पीठों के ऊपर दिव्य सिंहासन से चार अंगुल ऊंचाई पर अधर में विराजमान रहते हैं। शिर पर तीन छत्र, चोंसठ चमर एवं प्रभामण्डल से विभूषित रहते हैं। अरहंत परमात्मा के दो भेद हैं :- (१) तीर्थंकर अरहंत (२) सामान्य अरहंत। तीर्थंकर अरहंत दो तीन और पाँच कल्याण वाले होते हैं। सातिशय अरहंत - गंध कुटी युक्त केवली, सामान्य अरहंत - मूक अर्हंत। उपसर्ग अर्हंत, अन्तकृत अर्हंत। अर्हंतों केउतने ही भेद हैं जितने केवली के भेद होते हैं।

अर्हंत परमात्मा जन्म जरा आदि अठारह दोष रहित चौंतीस

अतिशय सहित, आठ प्रातिहार्य युक्त अनंत चतुष्टय मंडित अरहंत होते हैं। तथा आयुध अम्बर राग-द्वेष काम क्रोध आदि निंद्य भावों के चिन्हों से रहित धर्म तीर्थ प्रवर्तक गणधर आदि महामुनियों से पूज्य होते हैं।

अर्हंत शांत, सुख स्वरूप शुद्ध बुद्ध स्वभावी निर्विकल्प ध्यान का ध्येय है। वीतराग विज्ञान मय होने से पूजा योग्य हैं। ऐसे नित्य निरंजन विज्ञान घन परमज्योति स्वरूप परमात्मा सर्व क्षेत्रों, सर्व कालों में विराजमान नहीं रहते हैं। इसलिए उनके गुणों की आदर्श रूप स्थापना मूर्ति में करते हैं और उसके माध्यम से मूर्तिमान के आदर्शों की पूजा की जाती है।

सिद्ध - अर्हंत अवस्था के उपरान्त चार अघातिया कर्मों का क्षय कर, परमौदारिक शरीर त्याग कर ऊर्द्ध गमन स्वभाव से लोकाग्र में किंचित न्यून पुरुषाकार विराजमान हैं वे सिद्ध कहलाते हैं। सम्यक्त्व आदि अष्ट गुण प्रगट हुए हैं। समस्त पर द्रव्य एवं द्रव्यकर्म, नो कर्म, भाव कर्म रहित हैं वे सिद्ध परमात्मा हैं।

शास्त्र/आगम - शास्त्र शब्द का सामान्य अर्थ ग्रन्थ/पुस्तक है। तथा आ. परम्परा से आगत जिन मुखोद्भूत उपदेश / सिद्धान्त को आगम कहा जाता है। अर्थात् सर्वज्ञ प्रणीत मूल सिद्धान्तों के प्रतिपादक ग्रन्थ आगम कहलाते हैं।[२४] आगम प्रमाण, नय, निक्षेप आदि से अबाधित होते हैं। अर्थात् पूर्वापर दोष रहित शुद्ध होते हैं।[२२] वादी-प्रतिवादी द्वारा खण्डन करने में न आवे वस्तु तत्व प्रकाशन सर्व जीवों को हितकर[२३] एवं जिससे तत्वार्थों का ज्ञान होता है उसे आगम कहते हैं। अथवा छः

द्रव्य, सात तत्व आदि का सम्यक श्रद्धान ज्ञान व्रत दि के अनुष्ठान/चारित्र रूप भेद रत्नत्रय के प्रतिपादक शास्त्र आगम कहे जाते हैं।[२५]

आगम में पदार्थों का निरुपण तीन प्रकार से किया गया है - १ हेय २ ज्ञेय ३ उपादेय। अतः तत्वार्थों के सम्यक् निर्णय आगम का सेवन, युक्ति का आलम्बन, गुरु परम्परा का उपदेश तथा स्वानुभव से करना चाहिए।

सर्वज्ञ की वाणी निरक्षरी खिरती है। अनंत पदार्थों के अनंत गुण और उनकी अनंत-अनंत पर्यायों का एक साथ कथन करना अक्षरात्मक वाणी से असम्भव है। इसलिए जिनेन्द्र की दिव्य ध्वनि चार ज्ञान के धारक गणधर की उपस्थिति में खिरती है। जो स्याद्वाद शैली युक्त वीतरागता पोषक होती है।

तीर्थंकर महावीर स्वामी के समय में मनुष्यों की धारणा शक्ति और परिणामों में सरलता होने से जिनवाणी लिपिबद्ध नहीं की गई। मौखिक ही श्रुत/श्रवण रूप में प्रचलन रहा। किन्तु काल दोष से धारणा एवं बुद्धि की मंदता के कारण सम्पूर्ण श्रुत लिपिबद्ध न हो सका। कालान्तर में अवशिष्ट ज्यों का त्यों लिपिबद्ध किया गया उन रचना रूप शास्त्रों को पाहुड कहा गया। अथवा आप्त प्रणीत उपदेश को शब्द प्रमाण एवं शब्द प्रमाण को ही श्रुत कहा जाता है।[२६]

आगम महिमा - आगम देवेन्द्रों, असुरेन्द्रों से पूजित, अनंत सुखोत्पादक कर्ममल दलनक/विनाशक, पवित्र, भद्ररूप, अनंत अर्थ संयुक्त, दिव्य कलिकलुष हारी, निकाचित, सुव्यवस्थित

अपरिवर्तित, अनुत्तर विमल, निःसन्देह, स्वर्गसोपान, मोक्षद्वारभूत अक्षय अनादि निधन है।[२७] अतः उन शास्त्रों की ही पूजा करनी चाहिए जो भेद-अभेद रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग के निरूपक हों। किन्तु जिन शास्त्रों में रागादि का पोषण हो और रागादि को धर्म कहा गया हो, तथा संसार एवं शरीर सम्बन्धी भोगों का पोषण किया गया हो वे शास्त्र पूज्य नहीं है। क्योंकि पूजा उन ही शास्त्रों की होती है जिसके अध्ययन से जीव मुक्त अर्थात् संसार से मुक्त हो सके। जिस ग्रन्थ के पठन श्रवण करने से स्वात्मा का घात हो, संसार की वृद्धि हो इस प्रकार के शास्त्र पूज्य नहीं है एवं उनका पठन-श्रवण भी नहीं करना चाहिए।

साधु का सामान्य स्वरूप - शुद्ध आत्म स्वभाव का साधक साधु है। साधु वीतराग यथा जात रूप निग्रन्थ दिगम्बर मुद्रा धारी शुद्ध स्वरूप में विश्रांत रहने वाले होते हैं। साधु परमेष्ठी ही सद्गुरु कहलाते हैं। वस्त्र आदि परिग्रह से युक्त सद्गुरु नहीं होता है। रत्नत्रय सम्पन्न जैन साधुओं के तिल तुष मात्र/ बाल की नोंक मात्र परिग्रह नहीं होता है।[२८] पीछी जीव रक्षार्थ और कमण्डलु शौच शुद्धि हेतु रखते हैं। पीछी और कमण्डलु रखना परिग्रह नहीं है। क्योंकि वह इन्द्रिय-विषय पोषण के लिए नहीं है। अपितु अपना प्रमाद और अशुद्धि दूर करने के लिए है। तीर्थंकर परमात्मा भी जब तक वस्त्र धारण करते हैं अर्थात् गृहस्थ अवस्था में रहते हैं तब तक उन्हें भी गुरु संज्ञा नहीं है एवं निर्वाण भी नहीं है।

सम्यग्दर्शन ज्ञान से पूर्ण मोक्ष मार्ग रूप शुद्ध चारित्र को

साधने वाले साधुओं को मेरा नमस्कार हो।[२९] यथाजातरूप धारी दया परायण साधु[३०] सेठ-साहूकार, नेता, पंडित से अप्रभावित, श्मशान-महल, काँच-कंचन, निंदा-स्तुति में समताधारी, अमीर-गरीब, राजा-प्रजा, प्रतिबुद्ध-अप्रतिबुद्ध शत्रु-मित्र सभी जीवों को सम भाव से शुद्धात्मा का ज्ञानामृत पान कराते हैं। तथा मुक्ति की ओर अग्रसर होने में कारण हैं।

साधु परमेष्ठियों की विषयों के प्रति रुचि अतीत की भाँति व्यतीत हो जाती है। जिस प्रकार अतीत कभी भी वर्तमान नहीं होता है उसी प्रकार साधु परमेष्ठियों की विषयों में रुचि वर्तमान जीवन में कभी नहीं होती है। वे तो सदैव ज्ञान ध्यान और तप में लीन रहा करते हैं।[३१] वे सिंह के समान पराक्रमी, गज के समान उन्नत, बैल के समान भद्र प्रकृति, मृग के समान सरल, गाय के समान निरीह गोचरी वृत्ति, पवन के समान निःसंग एवं सर्वत्र विचरण, सूर्य के समान तेजस्वी एवं सकल तत्व प्रकाशक, सागर के समान गम्भीर एवं अन्तरंग विकार रूप मैल को फेंकने वाले, मेरु समान अकम्प, चन्द्रमा के समान शक्तिदायक, मणि के समान ज्ञान प्रभापुंज, क्षिति के समान उपसर्ग एवं परिषजयी, सर्प के समान अनियत वसतिकावासी, आकाश के समान निरालम्बी, निर्लेप, एवं सदा काल परमानंद का अन्वेषण करने वाले साधु होते हैं।[३२] ऐसे साधु तपः पुत्र ज्ञान दिवाकर परिषहजयी, जितेन्द्रिय, शुद्धत्म स्वरूप निमग्न, हितोपदेशी, मोक्ष मार्ग व्याख्याता, सिद्धान्त मूर्ति, जगोद्धारक, करुणाकारक, कर्मोन्मूलक होते हैं।

स्वरूप स्थिरता हेतु पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, अट्ठारह हजार शील, चौरासी लाख उत्तर गुणों का पालन, अट्ठाईस मूल गुण, ६ आवश्यक में प्रवृत्ति करने वाले साधु प्रातः स्मरणीय परम पूज्य होते हैं।

साधुओं के दो लिंग होते हैं - १ द्रव्य लिंग और २ भाव लिंग। द्रव्यलिंग भी दो प्रकार का है - १ सम्यक्त्व सहित और २ सम्यक्त्व रहित। इसी लिंग के आधार पर साधु द्रव्य लिंगी और भाव लिंगी कहलाते हैं सम्यक्त्व सहित द्रव्यलिंगी का अर्थ है गुणस्थान चतुर्थ/पंचम / सम्यक्त्व रहित द्रव्य लिंग का अर्थ है - गुण स्थान प्रथम और बाह्य में निर्दोष महाव्रतों का पालन। भाव लिंग का अर्थः है - गुणस्थान सातवाँ, छटवाँ में झूलते हुए तथा आगे बढ़ते गुण स्थानों में रहने वाले तथा बाह्य में महाव्रत सम्पन्न। अर्थात् अन्तर-बाह्य समान है वे भाव लिंगी संत कहलाते हैं। तथा बाह्य में संसार-शरीर आदि में और अन्तरंग में रागादि परिणामों से अपनत्व बुद्धि रहित चित्त स्वभाव में लीन रहने वाले भाव लिंगी संत कहलाते हैं।

जैनागम में लिंग तीन हैं - १ यथाजात रूप दिगम्बर मुनि लिंग, २ उत्कृष्ट श्रावक ग्यारह प्रतिमाधारी ऐलक, ३ आर्यिका।

उपर्युक्त स्वरूप सम्पन्न साधु पूज्य हैं। असंयमी, वस्त्रधारी गुरु पूज्य नहीं होते हैं। धर्म शास्त्रों का अध्ययन कराने वाले वस्त्रधारी लौकिक गुरु हैं किन्तु धर्म गुरु नहीं हैं। उनका यथा योग्य सम्मान किया जा सकता है परन्तु जिनेन्द्र के सम्मुख नहीं। उनकी पूजा करने का तो प्रसंग ही नहीं है। पूज्य गुरु तो

रत्नत्रय सम्पन्न महाव्रती ही होते हैं। उनकी अपने घर पर आहार चर्या हेतु आने पर अष्ट द्रव्य से नवधा भक्ति पूर्वक पूजा करनी चाहिए। किन्तु ''ऐलक क्षुल्लक तथा आर्यिका की अष्ट द्रव्य से पूजा नहीं करनी चाहिए। उन्हें अर्घ्य भी नहीं चढ़ाना चाहिए। इसी प्रकार आरती भी नहीं उतारना चाहिए।''[३३]

आचार्य - रत्नत्रय की अधिकिता से संघ के नायक हैं। दीक्षार्थी को दीक्षा विधि बतलाकर, उसे दीक्षित होने में साक्षी भूत रहते हैं। श्रमण दीक्षा महावीर के शासन की है। दीक्षा गुरु मात्र साक्षी भूत है। जो श्रमण अपने दोष प्रगट करते हैं उन्हें प्रायश्यित विधि से शुद्ध करते हैं।

उपाध्याय - जिन श्रुत के विशेष ज्ञाता आचार्य की आज्ञा से जो पठन-पाठन के अधिकारी हैं। संघ के सभी साधुओं को अध्ययन कराते हैं।

जिन प्रतिमा - वीतराग जिनेन्द्र प्रतिमा पूज्य है। प्रतिमा का शाब्दिक अर्थ मूर्ति है। ''प्रतिमा'' में प्रति+मा है। 'प्रति' यह अव्यय है और 'मा' संज्ञा है। प्रति का अर्थ है - प्रतिबिम्ब समानता/समरूपता। और 'मा' का अर्थ दीप्ति है। अर्थात् प्रतिमा का अर्थ है मूर्ति में जिनेन्द्र के गुणों की समानता से दीप्ति। ''जिन प्रतिमा जिन सारखी, कही जिनागम माहि। अंश मात्र दूषण लगे तो पूज्यनीक है नाहिं।''

आगम में दो प्रकार की जिन प्रतिमाओं का निरूपण किया गया है - १ सचल २ अचल। अथवा जंगम तथा स्थिर (स्थावर) जिनका दर्शन ज्ञान से चारित्र शुद्ध है, यथाजात रूप निर्ग्रन्थ

दिगम्बर राग-द्वेष रहित चलित देह को जिन मार्ग में जंगम प्रतिमा कहा है ।[३४] जो शुद्ध आचरण करते हैं । सम्यग्ज्ञान से वस्तु के स्वरूप को यथार्थ जानते हैं । अपने शुद्ध स्वरूप को देखते हैं । ऐसी निर्ग्रन्थ संयम स्वरूप प्रतिमा है वह ही वंदन करने योग्य है ।[३५] शुद्ध दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप निर्ग्रन्थ संयम सहित मुनि है वह प्रतिमा है वही वंदन पूजन के योग्य है । इन जंगम प्रतिमाओं का ज्यों का त्यों स्वरूप प्रदर्शित करने वाली धातु/पाषाण की मूर्ति को प्रतिष्ठा उपरान्त पूज्य कहा है ।

अर्हन्त प्रतिमा में प्रातिहार्य आदि चिन्ह होते हैं । सिद्ध प्रतिमा चिन्ह रहित होती है । पोलाकार प्रतिमा प्रतिष्ठेय नहीं है । प्रतिमा को चैत्य और प्रतिमा के स्थान को चैत्यालय/मन्दिर कहा जाता है । चैत्य एवं चैत्यालय कृत्रिम और अकृत्रिम भी होते हैं । कृत्रिम चैत्य चैत्यालय मनुष्य लोक में और अकृत्रिम चैत्य चैत्यालय चार प्रकार के देवों के निवास स्थान में तथा मध्य लोक में तेरह द्वीपों में स्थित हैं । देव गण कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्य चैत्यालयों की पूजा करते हैं और मनुष्य कृत्रिम चैत्य चैत्यालयों की पूजा करते हैं । आ. कुन्दकुन्द देव कहते हैं - हे जिनवर देव आपका रूप रागोदय के नष्ट हो जाने से अनाभरण रूप प्रकाशमान है । आपका सहज स्वाभाविक रूप निर्दोष है । जो स्वभाव से ही सुन्दर होता है उसे आभूषण धारण करने की आवश्यकता ही नहीं होती है ।[३६] हे जिनेन्द्र आप सर्वंग सुन्दर अजेय तथा निर्भय हैं । इसलिए आपको आभूषणों और पुष्पों से कोई प्रयोजन नहीं है ।[३७]

भगवान जिनेन्द्र की प्रतिमा पूर्ण वीतारग मय होती है। वही पूज्य है। जिन प्रतिमा पर चन्दन आदि का लेप/तिलक नहीं करना चाहिए। लेप करने से प्रतिमा वीतराग न रह सकेगी और वीतरागता की भी पूजा न हो सकेगी। प्रतिमा पर फल-फूल भी नहीं चढ़ाना चाहिए। फल-फूल चढ़ाने से प्रतिमा सरागी/परिग्रही हो जाती है। जिन प्रतिमा को सरागी बनाने से वीतरागता खण्डित करने का महान दोष/पाप लगता है। जिनागम में पूजा वीतरागता की है सरागता की नहीं है। जो निर्दोष वीतराग देव को ही देव मानता है वह सम्यग्दृष्टि है और जो सरागी देव को देव मानता है वह मिथ्यादृष्टि है।[३८]

जिन मन्दिर - मन्दिर समवशरण का प्रतिरूप है। आगम में मन्दिर को समवशरण, वेदी को गंधकुटी और जिन प्रतिमा को साक्षात अर्हंत माना है। मन्दिर जिन संस्कृति का प्राण एवं आध्यात्मिक प्रयोगशाला है।[३९] मन्दिर का अर्थ है - मन्=मन, दि=दिगम्बर, र=रहे। जहाँ पर मन दिगम्बर रहे। अर्थात् मन में बाह्याभ्यन्तर संकल्प-विकल्प जाल उत्पन्न ही न हों। अथवा मन्=मन, दि=दीक्षित, र=रहे। जहाँ मन दीक्षित रहे। अर्थात् मन विषय-कषायों से रहित वैराग्य रस से रस विभोर रहे उस देव स्थान को मन्दिर/जिनालय कहा जाता है।

मन्दिर में श्रृंगार भोग आदि की चर्चा एवं चर्या नहीं करनी चाहिए। चौरासी आसादन दोष नहीं लगाना। मन्दिर के शिखर तक की छाया/परछाई पर पैर नहीं रखना चाहिए। क्योंकि उस पर पैर रखने से अविनय का दोष लगता है। इस दोष से बचने

के लिए प्राचीन मन्दिरों में प्रवेश के लिए तीन दिशाओं में द्वार हैं। सूर्य के प्रकाश से जिस दिशा में मन्दिर की छाया पड़ रही है उस दिशा को छोड़कर उसकी विपरीत दिशा के द्वार से मन्दिर में प्रवेश किया जाता है। मन्दिर की छाया पर पैर नहीं रखना चाहिए। मन्दिर पूर्व मुखी अथवा उत्तर मुखी होते हैं।

जिन धर्म व्युत्पत्ति - ''धर्म'' शब्द ''धृ'' धातु से निष्पन्न है। 'ध्रीयते लोकोऽनेन धरति लोकं वा धर्मः' अथवा 'इष्टस्थाने धत्ते इति धर्मः' जिसके द्वारा लोक श्रेष्ठ स्थान में धारण किया जाता है वह धर्म है/या जो इष्ट स्थान में धारण करता है वह धर्म है। ''संसार दुःखतः उत्तमे सुखेधरति धर्मः'' जो जीव को संसार के दुःखों से छुड़ा कर उत्तम सुख मोक्ष में पहुँचाता है वह धर्म है। इस भरत क्षेत्र के इस युग में आदि तीर्थंकर आदिनाथ ने दयामूलक धर्म कहा है।[४०] अथवा जीवों की रक्षा करना धर्म है।[४१] अथवा अहिंसा आदि लक्षण धर्म है।[४२] जो कि बाह्य में नहीं अपितु आत्मा में है। आत्मा के सहज स्वाभाविक निरुपाधिक परिणाम ही धर्म है। प्रत्येक आत्मा दर्शन ज्ञान चारित्र वीर्य आदि अनंत गुणात्मक है। इसकी स्वीकारता, ज्ञातृत्व और स्थिरत्व रत्नत्रय धर्म है। तथा उत्तम क्षमा आदि दशलक्षण धर्म है। जो कि आत्म स्वभाव हैं।

उस आत्म स्वभाव रूप धर्म को अनेक विशेषताओं से समझा जा सकता है /युक्त है। वह धर्म चित् का सहज स्वभाव है। उस सहज में लीनता विश्राम अनुभूति साक्षात् मोक्ष का कारण है। धर्म का अनुभव/ प्राप्ति निर्मोह भावों से होती है।

वह पुण्य रूप प्रवृत्ति रहित निवृत्ति प्रधान है। आत्म स्वभाव होने से शुद्ध है स्वाश्रित है भूतार्थ है, स्व समय है, निरपराध, निर्विकल्प, वीतराग, अहिंसक, निराश्रव, निर्बाध, स्वरूप प्रविष्ट, सुख स्वरूप, साम्य उपादेय है। धर्म का फल अतीन्द्रिय आनंद है जिसमें लीन रहना मोक्ष का कारण है और मोक्ष स्वरूप है। इस प्रकार की अनंत विशेषता सम्पन्न धर्म ही पूज्य है।

पूजक का स्वरूप - जिनेन्द्र परमात्मा का पूजक पूजन के समय सम्यक व्रत सहित होता है। वह अपने चित्त को सावद्य योग से रहित, कषायों से मुक्त, निर्मल, उदासीन और आत्म रूप बनाता है। क्योंकि विशुद्ध चित्त में ही परमात्म स्वरूप चित्रित होता है। परमात्मा के स्वरूप को अपने विशुद्ध चित्त में चित्रित करता है। अर्थात् गुणानुवाद के अनुरूप ही वीतराग स्वरूप उसके चित्त में झलकता है। यदि गुणानुवाद के अनुरूप स्वरूप चित्रित न हो तो अपने परिणामों को और विशुद्ध करता है। जिस प्रकार टी.वी. चालू करने पर दूरदर्शन से प्रसारित समाचार/कार्यक्रम सुनाई और दिखाई न देवे और अन्य कार्यक्रम सुनाई, दिखाई देवे तो इसका अर्थ है। अथवा टी.वी. खराब नहीं है अपितु उसमें वी.सी.आर. पर लगी कैसेट चित्रित और ध्वनित हो रही है। टी.वी. सेट पर डिस्क की चेनल लगी है। इसलिए सर्वप्रथम वी.सी.आर./डिस्क से टी.वी. सेट का संबंध विच्छेद करना चाहिए। पश्चात् दूरदर्शन का नम्बर चेनल लगाइए और फाइन ट्यूनटर को घुमाकर चित्र ठीक करना चाहिए तभी समाचार/कार्यक्रम यथावत सुना और देखा जा सकता है। उसी प्रकार जिनेन्द्र पूजन करते समय अपने उपयोग को परमात्म स्वरूप

में स्थिर करता है, जिससे जिनेन्द्र परमात्मा का स्वरूप चित्त में चित्रित होता है यदि स्वरूप चित्रित न हो तो अपने उपयोग को ठीक कर परमात्मा स्वरूप में लगाता है। यदि इन्द्रिय विषयों के चित्र चित्रित होते हों तो विषयों की कैसिट हटाकर वीतरागता के नम्बर पर उपयोग को लगाता है। यथा परिणाम रूपी चेनल इतना घुमाता है कि वीतरागता का स्वरूप यथार्थ झलकने लगता है। इस प्रकार की पात्रता तभी सम्भव है जब पूजक का चित्त एकदेश वीतरागता युक्त हो। वीतराग चित्त में ही वीतरागता का स्वरूप चित्रित होता है। इसलिए वीतराग जिनेन्द्र देव का पूजन व्रती बन कर करना चाहिए। व्रत युक्त भावों से ही पूजक में पूजन करने की पात्रता आती है।

पूजक की पात्रता के सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों की मान्यता है कि स्थापना निक्षेप के आधार पर पूजक अपने को संकल्पी इन्द्र मानता है। अपने को इन्द्र मान कर पूजन करने में उनका सशक्त तर्क यह है कि इन्द्रों द्वारा की जाने वाली विधि का अनुकरण श्रावक ने किया है। इसलिए पूजक संकल्पी इन्द्र है। तथा पूजन विधि में प्रयुक्त होने वाली सभी सामग्री भी संकल्पी है। किन्तु इस तर्क से इन्द्र बन कर पूजन करना सिद्ध नहीं होता है। इससे तो यह प्रतीत होता है कि श्रावक ने पूजन विधि का अनुकरण किया है, न कि पूजक बनने का। यदि इन्द्र बन कर ही पूजन करना स्वीकार किया जावे तो अव्रती चतुर्थ गुण स्थानवर्ती श्रावक पूजन करने का पात्र है। किन्तु व्रती श्रावक पूजन का पात्र/पूजक न ठहरा। जबकि चतुर्थ और पंचम गुण स्थानवर्ती दोनों ही जिनेन्द्र की पूजा करते हैं।

श्रावक के छः नित्य कृति कर्मों में जिनेन्द्र देव का पूजन करना प्रथम नित्य कृति कर्म है। देव पूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान प्रत्येक गृहस्थ को प्रतिदिन करना चाहिए। ये छः नित्य कृति कर्म इन्द्रों को नहीं हैं। आ. पद्मनन्दी मूल श्लोक में 'गृहस्थानां' लिखा है देवानां/इन्द्रानां नहीं लिखा है।[४४] इसलिए गृहस्थ श्रावक को अपने नित्य कृति कर्म करने के लिए इन्द्र बनना न्यायोचित प्रतीत नहीं होता है।

पूजन के भेदों में नित्यामह, सर्वतोभद्र और कल्पद्रुम ये तीन प्रकार की पूजन मनुष्य ही करते हैं इन्द्र नहीं। तथा तेरह द्वीपों के अकृत्रिम चैत्य चैत्यालयों की पूजा मनुष्य लोक के कृत्रिम चैत्य-चैत्यालयों में ही वहाँ का संकल्प कर पूजन करता है।[४४]

इन्द्र की भूमिका से मनुष्य की भूमिका और मनुष्यों में भी व्रती मनुष्य की भूमिका उत्तरोत्तर उत्कृष्ट है। इन्द्र मनुष्य पर्याय पाना चाहता है, जबकि मनुष्य/जिनेन्द्र पूजक इन्द्रादिक पद और तद्जन्य इन्द्रिय विषय भोगों का सेवन करना नहीं चाहता है। उसे मात्र राग-द्वेष रहित परमात्म पद प्राप्ति की अभिलाषा रहती है।[४५] इन्द्र चतुर्थ गुणस्थानवर्ती है और व्रती पंचम गुणस्थानवर्ती है। व्यवहारिक दृष्टि से भी इन्द्र के पद से व्रती का ऊँचा पद है। अतः व्रती पंचम गुणस्थानवर्ती अपने में चतुर्थ गुणस्थानवर्ती का संकल्प कैसे कर सकता है। अर्थात् नहीं कर सकता है। व्रती संयमी अपने को अव्रती संकल्पित नहीं करेगा। वह व्रती रह कर ही जिनेन्द्र पूजन करेगा। इससे स्पष्ट होता है कि पूजक

को जिनेन्द्र पूजन करने के लिए व्रती संयमी होना आवश्यक है परन्तु अव्रती बनना आवश्यक नहीं है। भरत चक्रवर्ती भी पूजन करने के समय अपने को संयत करते थे। वे पूजन के समय सर्व राजकीय कार्यों से निवृत्त होकर अधो और ऊर्द्ध मात्र दो वस्त्र पहनकर जिनेन्द्र पूजन करते थे।

इन्द्र गण पँचम गुणस्थानवर्ती न होकर भी बिना त्याग के चतुर्थ गुणस्थानोंचित संयमी होते हैं। उनमें किसी प्रकार का असंयम नहीं है। उन्हें असंयमी कहने का प्रयोजन यह है कि उनके एक देश संयम को घात करने वाली अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय है। जिस प्रकार श्रेणिक आदि को अव्रती होने पर भी शास्त्रों में संयमी श्रावकों में श्रावकोत्तम कहा है।

पंच कल्याणक जिन बिम्ब प्रतिष्ठा में स्थापना निक्षेप के आधार पर मनुष्यों को इन्द्रदिक की उपमा/संकल्प किया जाता है। उनके नियोगानुसार उनसे जिन बिम्ब प्रतिष्ठा का कार्य सम्पादन कराया जाता है। संकल्पी इन्द्रों द्वारा सामान्य मनुष्योंचित कार्य नहीं कराया जाता है। वे मुनिराज को आहार दान नहीं देते हैं। आहार दान के समय पुष्प वृष्टि आदि पँचाश्चर्य करते हैं। मुनिराज को आहार दान देना श्रावक का कर्त्तव्य है, इन्द्रादिकों का नहीं है।

जिन बिम्ब प्रतिष्ठा में मंत्र पूर्वक नामकरण द्वारा स्थापना की जाती है। जो अचेतन में/तदाकार प्रतिमा में सम्भव है। बिम्ब/ प्रतिमा में तीर्थंकर की स्थापना करने से उसमें पूज्य बुद्धि होती है। चेतन में स्थापना निक्षेप नहीं होता है। इसलिए मनुष्यों को

इन्द्र की उपमा/संकल्प किया जाता है।

वीतराग जिनेन्द्र की पूजा करने में पूजक को संयत ही रहना चाहिए। असंयम बन कर पूजा करना वैसा ही अनुचित है जैसा जिन बिम्ब के प्रक्षाल/अभिषेक करते समय जन्माभिषेक पाठ बोलना/अर्हंत प्रतिमा का प्रक्षाल करते समय आचार्य माघ नंदी अथवा हिन्दी में पं. हरजसयकृत अभिषेक पाठ बोला जाता है। जन्माभिषेक पाठ पँच कल्याणक प्रतिष्ठा में जन्म कल्याणक के दिन पाण्डुक शिला पर जन्माभिषेक के समय बोलना उचित है। उसी प्रकार नित्य नियम पूजन में पूजक को व्रती बन कर पूजन करना चाहिए। इन्द्रादि बन कर नहीं। प्रतिष्ठा आदि विशेष अनुष्ठानों में इन्द्रादि बनकर पूजा करना उचित है।

प्रतिष्ठा/मण्डल विधान आदि विशेष आयोजनों में उपमित इन्द्र बनकर पूजन करने का प्रचलन हैं। इसका कारण यह है कि जिस समय से मंत्र विधि पूर्वक मनुष्य उपमित इन्द्र बन जाता है उस समय से आयोजन समय पर्यन्त गृहस्थ सम्बन्धी सुआ/सूतक आदि दोष नहीं माना गया है। क्योंकि उपमित इन्द्र होने पर वह मनुष्याचार रूप नहीं रहता है। विशेष आयोजनों में समय अधिक लगता है। इसलिए गृहस्थ जीवन में सुआ/सूतक जैसी घटनाओं से मुक्त कर उन्हें उपमित इन्द्र बनाया जाता है। इन्द्रों को इस प्रकार कोई दोष नहीं लगता है। आयोजन भी निर्विघ्न सम्पन्न हो जाता है। किन्तु प्रतिदिन इन्द्र बन कर पूजन करने का कोई औचित्य नहीं है।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि पूजक मनुष्य संयत व्रती

बन कर पूजन करता है, असंयत रह कर नहीं। मानवों में इन्द्र की स्थापना नहीं है मात्र संकल्प/उपमा है। उपमा एकदेश होती है। मनुष्यों का इन्द्र बनना स्थापना और पूर्णोपमा नहीं है। इन्द्रादि का संकल्प कर पूजन करने का प्रयोजन मात्र इतना है कि भौतिक दृष्टि से महान इन्द्रों द्वारा पूजन से तीर्थंकरों की महानता बतलाना है। अन्य कोई भी प्रयोजन नहीं है।

पूजक का आचार- श्रमणाचार के परिपालनार्थ उसका एक देश आचरण करने का नाम श्रावकाचार है। इसके द्वारा श्रावक घर में रहकर ही श्रमण धर्म का अभ्यास करता है। स्वतंत्रता एवं स्वावलम्बन के बल से आत्मा में आंशिक शुद्धि प्रगट कर पूर्ण शुद्धि प्रगट करने का उद्यम निरन्तर वर्तता रहता है।

श्रावक शब्द पुलिंग है। श्रा+व+क वर्णों से मिलकर बना है। जिसका वार्णिक अर्थ - श्रा=रत्नत्रय पूर्ण करने का उद्यमी, व मांगलिक, क=ब्रह्म स्वरूप आत्मा अर्थात् रत्नत्रय की पूर्णता रूप एकता को प्राप्त करने को उद्यमी मांगलिक आत्मा। "श्रावक का शब्दिक अर्थ=जिनधर्मानुयायि श्रोता। "श्रावक" का भाव साधन अर्थ श्रा=श्रद्धावान, व=विवेकवान, क=क्रियावान। अथवा जो आप्त के वचनों को श्रवण करे उस पर श्रद्धान करे, अपने पूर्वों पार्जित कर्मों का क्षय करे उसे श्रावक कहते हैं।

श्रावकाचार की विधि एवं विधान पूर्णतः साध्य नहीं है, किन्तु पूर्व भूमिका में हस्तावलम्ब है। साध्य रूप आत्म सिद्धि का आभ्यन्तर कारण रत्नत्रय की पूर्ण एकता है। उसका सहकारी

बाह्य कारण विशुद्ध आचार है। इसका आचरण कर अपना जीवन अहिंसात्मक न्याय नीति सम्पन्न, गुणानुरागी; वात्सल्य भावी, हित-मित-प्रिय मधुर भाषी बनाता है। अपना सम्बन्ध साधर्मी जनों के साथ रखना। न्याय से धनार्जन करना, गुणीजनों का आदर करना, पाप भीरु रहना, सत्संगति करना। लज्जाशील, विनयवान जितेन्द्रिय, शास्त्रज्ञ, कृतज्ञ, दयालु इत्यादि, गुणों का विकास करना। भोगों की आसक्ति, स्वार्थमूलक वृत्तियों, अर्थ लुब्धता अदया इन्द्रियाधीनता, अन्याय, अनीति आदि दुर्गुणों का त्याग करना।

श्रावकाचार का वर्गीकरण कई दृष्टियों से किया जाता है। फिर भी प्राथमिक भूमिका में तीन भेद मुख्य है - १. पक्ष २. द्वादशव्रत ३. ग्यारह प्रतिमाएं

वीतराग सर्वज्ञ देव, निर्ग्रन्थ गुरु, वीतरागता पोषक शास्त्र. दयामयी अहिंसा धर्म को मानना पक्ष है। ऐसे पक्षधारी श्रावक को पाक्षिक कहा जाता है। उसका प्रमुख कर्तव्य है सभी प्राणियों के प्रति मैत्री, साधर्मी के प्रति वात्सल्य, दीन दुःखियों के प्रति करुणा एवं विपरीत वृत्ति-प्रवृत्ति वालों के प्रति माध्यस्थ भाव रखना। धर्म के आलोक में, अन्याय अनीति, तृष्णा लोभ रहित विषयों को सीमित कर परिवार के भरण पोषण के लिए धनाजर्न करना। उसमें से शेष बचने पर उसे धर्म कार्यों में लगाना। सभी साधर्मी जनों से अप्रिय कठोरता रहित निर्दोष वचन व्यवहार करना, आत्म शुद्धि बढ़ाने के लिए संयमी जनों की संगति करना। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए अभ्क्षय, अमर्यादित

एवं रात्रि भोजन और रात्रि में बना हुआ भोजन नहीं करना।

चारित्र के विकास हेतु दश लक्षण धर्म, रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग के विकास हेतु निज शुद्ध स्वभाव की आराधना निरन्तर करना तथा प्रतिदिन जिनालय में जाकर जिनेन्द्र पूजन एवं स्वाध्याय करना। द्वारा प्रेक्षण कर मुनियों को आहारदान देना। धर्मार्थ, देवतार्थ, भोगोपभोगार्थ, मंत्र सिद्धि एवं आरोग्यार्थ हिंसा न करना। आसव अरिष्ट न पीना। अष्ट मूल गुणों का पालन, सप्त व्यसनों का त्याग एवं पांच पापों का एक देश त्याग करना। अहिंसा धर्म का पालन करते हुए जीवन के अंत में सल्लेखना पूर्वक देह का त्याग करना।

आत्म कल्याण का मूल अहिंसा है। अहिंसा आचार संहिता की प्राण है। अहिंसा धर्म की पुष्टि एवं वृद्धि के लिए पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत रूप बारह व्रतों का पालन करना।

पूजक का जीवन - पूजक का जीवन विषयों से अनासक्त एवं कषायों से मुक्त होता हुआ स्वसंवेदन के प्रति सजग रहता है तथा प्रदर्शन और प्रसिद्धि से परे आत्म दर्शन और आत्म सिद्धि कर निर्वाण की ओर उद्यमवंत/अग्रसर रहता है। उसके जीवन की समस्त प्रवृत्तियाँ शुद्ध स्वभाव को दर्शाने वाली स्वान्तः सुखाय हुआ करती हैं। महाव्रतों का पालन करने की अभिलाषा से अणुव्रतों का पालन करता है। संयम भाव जाग्रत होने पर दर्शन प्रतिमा आदि के बढ़ते क्रम से व्रतों का पालन करता हुआ रत्नत्रय की एकता रूप पूर्णता का संवर्द्धन करता है।

पूजक के कार्य - श्रावक के छः नित्य कृति कर्मों में देव पूजा का प्रथम स्थान है। आगम में इस तथ्य को युगों-युगों से स्वीकार किया गया है। श्रावक प्रातः उठकर सर्वज्ञ के स्वरूप को पहचान कर भक्ति पूर्वक देव शास्त्र गुरु का दर्शन/पूजन करता है। उनसे धर्म श्रवण कर मुनिराज को नवधा भक्ति से आहार दान देता है। तत् पश्चात् अन्य कार्यों को करता है।[४६] पूजन के द्वारा पूज्य के गुणों का स्मरण करता हुआ आत्म शुद्धि प्रगट कर निज स्वभाव का स्मरण ध्यान करता है। समता आदि छः आवश्यक कार्यों का निरतिचार पालन करने के ध्येय से छः नित्य कृति कर्मों का प्रतिदिन पालन करता है। मिथ्यात्व रागादि समस्त विकल्प जाल का त्याग कर निज शुद्ध स्वरूप में स्थिर रहने का अनुष्ठान करता है।[४७] पूज्य के समान अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति हेतु अपना उपयोग निर्विकार निजस्वरूप में विश्रान्त करता है। तथा स्वेच्छाचार और शिथिलाचार रहित हो आत्मानुशासित रह स्वरूपाचरण को बढ़ाता है।

पूजक के विचार - पूजक जिनेन्द्र पूजन करते समय पूज्य के गुण स्वरूप की प्रतीति द्वारा आत्मा से परमात्मा/पूजक से पूज्य बनने की प्रक्रिया का विचार करता है। उसे स्वयमेव ही अपने स्वरूप की प्रतीति होने लगती है कि - मैं भी स्वभाव अपेक्षा पर भावों से भिन्न आदि अंत रहित शुद्ध ज्ञान दर्शन मयी सिद्ध समान हूँ। हाथी और सिंह की पर्यायों में रहने वाले जीव भी स्वरूप प्रतीति के बल से कालान्तर में ती. पार्श्वनाथ और ती. महावीर बन कर सिद्ध हो गए हैं। मैं भी सिद्ध बन सकता हूँ। मेरा पद भी सिद्ध समान है।

पूजक के परिणाम -

मैं वन्दों जिन देव को. करि अति निर्मल भाव ।विनयपाठ।
मन शान्त भयौ मिट सकल द्वन्द, चाख्यो स्वातम रस दुःख निकन्द ।

शशि शान्ति करन तय हरन हेतु स्वयमेव तथा तुम कुशल देत ।
पीव पियूष ज्यों रोग जाय त्यों तुम अनुभवते भवन शाय ।

मैं वन्दो जिन देव को, करि अति निर्मल भाव ।
कर्मबंध के छेदने, और न कोई उपाय ।

सम्पद्यंता भम भव भवे .... निर्वाण संप्राप्तिः ।
जिन पूजन के भाव से कर्मकलंक नशाय ।

पूजन का स्वरूप - पूज्य के गुणों की भक्ति/स्तुति/आराधना/उपासना आदि को पूजन कहते हैं । जिनेन्द्र देव का पूजन करना गृहस्थ के हृदय की अत्यन्त उच्च उदात्त पुनीत एवं पवित्र भावना है । भावों की शुद्धता पूर्वक ही मन वचन काय की शुद्धता होती है । शुद्ध भावों को दर्शाने वाला आचरण शुद्ध आचरण कहा जाता है । जो आचरण भावों की निर्मलता को दर्शाने वाला न हो उस बाह्य आचरण को शुद्ध आचरण की संज्ञा नहीं है । क्योंकि आगम में द्रव्य के अनुसार चरण और चरण के अनुसार द्रव्य होता है । द्रव्य की सिद्धि ही चरण की सिद्धि है और चरण की सिद्धि ही द्रव्य की सिद्धि है ।[४८] उसी पकार पूजक अपनी आत्म विशुद्धि के अनुरूप प्रासुक द्रव्यों का आलम्बन लेता है और प्रासुक द्रव्यों के आलम्बन अनुसार अपनी आत्म विशुद्धि करता है ।

जैन दर्शन आत्मदर्शन और आत्म प्रसिद्धि का प्रदर्शक है। आत्मा की वीतराग अवस्था का नाम देव है। उस रूप की प्राप्ति का उपाय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता है। इसकी जानकारी और उसके प्रति अनुराग का नाम पूजा है। पूजा में पूजक का उपयोग कार्य परमात्मा से निज कारण परमात्मा में और कारण परमात्मा से पुनः कार्य परमात्मा की ओर जाता है। जिस प्रकार मुनिराज का उपयोग सातवे से छटवे और छटवे से पुनः सातवे में झूलता रहता है।

निश्चय पूजा पूर्वक व्यवहार पूजा होती है। आत्मानुभव विहीन पूजक तो व्यवहार पूजा का प्रयोजन ही नहीं समझता है। व्यवहार पूजा का अर्थ है वीतराग सर्वज्ञ भगवान के अनंत चतुष्टय स्वरूप से अपने में अनंत चतुष्टय स्वरूप को देखना/प्रगट करना है।

पूजन भव समुद्र से पार होने की उत्तम कला है। जिस में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता रूप विधि है। कार्य परमात्मा के गुणों को आदर्श मान कर उनके गुणों की पूजन की जाती है। जिससे आत्म दर्शन और आत्म सिद्धि की सामर्थ्य प्रगट होती है। इसलिए जिन रूप होने की सिद्धि का नाम पूजन है।

पूजन का प्रयोजन - पूजक अपने को पूज्य/परमात्मा बनाने के प्रयोजन से जिनेन्द्र की पूजा करता है। जिनेन्द्र के नाम स्मरण में ही इतनी शक्ति है कि जन से जिन बन जाता है।[४९] ऐसा जान कर मनुष्य उसकी श्रद्धा कर आपके नाम की भक्ति/पूजा करता है।[५०] पूजक स्वयं को जिन बनाने के लिए उनके

गुणों का आलम्बन लेकर अपने उपयोग को जिनेन्द्र के समान निर्मल निश्चल बनाना चाहता है। प्राथमिक भूमिका में उपयोग की स्थिरता बढ़ाने के लिए अनेक पूजनों को करता है। प्रथम पूजन में उपयोग अल्प स्थिर होता है तो द्वितीय पूजन में प्रथम पूजन से अधिक स्थिरता बढ़ जाती है तृतीय पूजन में और अधिक स्थिरता बढ़ जाती है। पूजन के माध्यम से पूजक उपयोग स्वरूप में स्थिर करने का अभ्यास करता है। समंतभद्र आचार्य ने अपने उपयोग को जिनेन्द्र के गुणों को अपने में स्थिर करने के लिए ऋषभ आदि तीर्थंकरों का क्रमशः स्मरण किया। भगवान आदिनाथ के स्तवन में उपयोग अल्प स्थिर हुआ। अजितनाथ के स्तवन में स्थिरता पहले से और बढ़ गई। इस प्रकार तीर्थंकरों के स्तवन में स्थिरता बढ़ती गई। आठवें तीर्थंकर चन्द्र प्रभ के स्तवन में शिव लिंग के स्थान पर चन्द्र प्रभ की प्रतिमा प्रगट हो गई। सिद्ध चक्र मण्डल पूजन विधान में द्विगुणित गुणों से पूजन का क्रम दिया है। वह क्रम जिनेन्द्र भगवान के गुणों में उपयोग की स्थिरता की वृद्धि के लिए ही प्रतीत होता है।

पूजन करने का प्रयोजन उपयोग का स्वरूप में स्थिर करना मुख्य है। समयाभाव के कारण पूजन की संख्या बढ़ाने की दृष्टि से अनेक पूजनों को सम्मिलित कर पूजन करना उचित प्रतीत नहीं होता है। पूजन की संख्या बढ़ जाने से उपयोग की स्थिरता में वृद्धि नहीं हो जाती है। पूजन की संख्या बढ़ाना वहाँ उचित हो सकता है जहाँ व्यक्ति पूजा की प्रधानता हो। वीतराग देव की पूजन में व्यक्ति नहीं अपितु गुणों की प्रधानता है। देव-शास्त्र और गुरु की समुच्चय पूजन का हेतु तो यह प्रतीत होता है कि

देव से सम्यग्दर्शन, शास्त्र से सम्यग्ज्ञान और गुरु से सम्यग्चारित्र में निर्मलता और वृद्धि होती है। सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र की एकता मोक्ष मार्ग है। पूजक एकता रूप मोक्ष मार्ग की प्राप्ति का अभिलाषी है। इस कारण देव-शास्त्र-गुरु की समच्चय पूजन करना उचित है, प्रयोजनवान है। किन्तु अन्य पूजनों को सम्मिलित करके पूजन करने से उपयोग स्थिरता का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है।

इससे स्पष्ट है कि जिनेन्द्र पूजन करने का प्रयोजन मात्र उपयोग को स्वरूप में स्थिर करने का अभ्यास है। जो उचित भी है। जिनेन्द्र पूजन करन से पूजक कोई भी लौकिक प्रयोजन नहीं साधता है।

जिनेन्द्र परमात्मा का पूजन व्यवहार से प्रातः मध्यान्ह और अपरान्ह तीन समयों में पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा किया जाता है।[५१] रात्रि में पूजा करना निषेध है। रात्रि में पूजा करने से हिंसा अधिक होती है। रात्रि में जीवों का संचार अधिक होता है। चक्षु से सूक्ष्म जीव दृष्टि गोचर नहीं होते हैं। उनके घात का महा पाप बंध होता है।[५२]

पूजन स्नान पूर्वक पवित्र ऊर्द्ध और अधो दो वस्त्र धारण कर खड़े-खड़े अति विनम्र भावों एवं अष्ट द्रव्यों के आलम्बन से की जाती है। अधो वस्त्र लज्जा ढकने के लिए और ऊर्द्धवस्त्र सिर ढकने के लिए है। बनियान आदि पहनना श्रृंगार का प्रतीक होने से अनुचित है। बाह्य में शरीर पर धारण किए गए ऊर्ध और अधो पवित्र वस्त्र को छोड़कर शेष सर्व परिग्रह का त्याग

एवं पूजन विधि सम्बन्धी आरम्भ परिग्रह को छोड़ कर शेष सर्व आरम्भ परिग्रह का त्याग कर जिनेन्द्र पूजन की जाती है। पवित्र वस्त्र का अर्थ है - धुले हुए हों तथा वस्त्र लघु शंका, दीर्घ शंका आदि करते समय पहने न हों।

बैठ कर पूजन करना तेरा पंथ (तुम्हारा/आपका जिनेन्द्र का) आम्नाय में वर्जित है। क्योंकि बैठ कर पूजन करने से प्रमाद उत्पन्न होता है एवं जिनेन्द्र के प्रति अनादर व्यक्त होता है। लौकिक व्यवहार में अपने घर स्वजन/स्नेहीजनों के आगमन पर खड़े होना, हाथ जोड़ना, गृह में प्रवेश के लिए कहना एवं उच्चासन पर बैठाना आदर/सम्मान सूचक है। कोई भी गृहस्थ यह क्रियाएं बैठ कर नहीं करता है। तब फिर त्रिलोकीनाथ जिनेन्द्र प्रभु के स्वरूप को अपने हृदय में चित्रित (आह्वानन्) करे उनके गुणों का स्थापन करे, और पर्याय में आनंद रूप परिणमन करे तब फिर वह बैठे रह कर कैसे करेगा। अर्थात् नहीं करेगा। अतः जिनेन्द्र पूजन खड़े-खड़े सिर ढक कर कर संवेग एवं वैराग्य मय भावों के साथ की जाती है।[५३]

पूजक पूजन के माध्यम से वीतराग सर्वज्ञ भगवान् को द्रव्यत्व गुणत्व और पर्यायत्व से समझ कर अपने मोह आदि का क्षय करने का अभ्यास करता है। जीवात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा के स्वरूप का चिन्तन कर आत्मा से परमात्मा बनने की प्रक्रिया का सम्पादन करता है। पूजन में आत्मा की अनंत शक्तियों का इन्द्रिय विषयों एवं कषायों से संघर्ष होता है। उसमें आत्म शक्तियों की विजय होती है। पूजक अपनी उदघाटित अनंत

शक्तियों को स्वरूप में स्थिर कर परमात्मत्व प्रगट करने का अभ्यास करता है।

अभिषेक (प्रक्षाल) - (अभि+सिच्+धज) अभि अव्यय है। जिसका अर्थ है और, प्रति तरफ अधिक। सिच् धातु है। जिसका अर्थ है सींचना। अथवा मूर्ति का जल सिंचन द्वारा प्रतिष्ठापन। 'सिच' भाव प्रधान क्रिया है। इसलिए इसका अर्थ हुआ मोक्ष के प्रति आत्मा को ज्ञान रूपी जल से सिंचन करना।

पुरुष स्नान[५४] कर धोती-दुपट्टा धारण कर अग्नि पर गर्म किए प्रासुक जल से यत्नाचार पूर्वक जिन प्रतिमाओं का प्रक्षाल कर प्रोक्षण करता है। प्रक्षाल करते समय आ. माघनंदी कृत अथवा हरजसरायजी कृत अभिषेक पाठ बोलता है/बोला जाता है। पूजक जानता है कि भगवान आप परम पवित्र हैं। जल से आपको पवित्र करने का कोई औचित्य नहीं है। किन्तु भक्ति से विवश होकर करता है। पूजक जानता है कि आप कर्म मल से रहित है, किन्तु वह अपने कर्म मल क्षय करने के उद्देश्य से प्रासुक जल से प्रक्षाल करता है।[५५] प्रक्षाल के बहाने वीतराग जिन बिम्बों को स्पर्श करने का प्रातः पुण्य अवसर मिलता है। जो जीवन को पवित्र बनाता है और वीतरागता की ओर आकर्षित करता है।[५६]

प्रक्षाल/अभिषेक करना पूजा का अंग न होने से प्रत्येक पूजक को प्रक्षाल करना अनिवार्य नहीं है। भगवान तो परम पवित्र हैं, केवल प्रतिमा शुद्धि की दृष्टि से एवं पवित्र होने के लिए प्रतिदिन प्रातः एक बार ही अग्नि पर गर्म किए प्रासुक जल

से किया जाता है। लवंग द्वारा किए प्रासुक जल से प्रक्षाल/अभिषेक करने से कुप्य/वस्त्र पहनाने का दोष आता है।[५७] एक बार प्रक्षाल/अभिषेक सम्पन्न हो जाने पर पुनः प्रक्षाल करना अथवा प्रत्येक पूजक को असमय में आकर प्रक्षाल करना अनुचित है। प्रक्षाल के समय अभिषेक पाठ बोलना चाहिए पँच मंगल पाठ नहीं। क्योंकि पाठ के आगे वस्त्राभूषण पहनाने का भी पाठ है।[५८] मंगल पाठ जन्माभिषेक के समय का है। जो कि पंच कल्याणक प्रतिष्ठा में जन्म कल्याणक के दिन जन्माभिषेक के समय बोलना उचित है। जिन पूजा के प्रारम्भ में प्रतिदिन जो प्रक्षाल किया जाता है, वह जन्माभिषेक का रूप नहीं है। वह जिन प्रतिमा शुद्धि के लिए किया जाता है।[५९]

गंधोदक को अनामिका और मध्यमा इन दो अंगुलियों से ललाट पर लगाया जाता है। अंगुलियों को इतना गंधोदक में डुबोयें कि नख गंधोदक को स्पर्श न करे। चम्मच से गंधोदक लेने की परम्परा सर्वथा अनुचित है। इससे तो लोगों को गंधोदक पान करने की पुष्टि का अवसर मिलता है। गंदे हाथ से गंधोदक लगाना वर्जित है फिर गंधोदक लेने के लिए चम्मच डालने का कोई औचित्य नहीं है। गंधोदक को नेत्र आदि मल द्वारों पर एवं सर्वांग में लेपन करना महापाप बंध का कारण है। क्योंकि पवित्र गंधोदक को मल द्वारों से स्पर्शित करने से उसकी अवमानना का महादोष उत्पन्न होता है। गंधोदक पान करना और भी बड़ा पाप है। वह पेट में पहुँच कर मल-मूत्र में मिल जाता है उस रूप परिणमन करता है।

तेरा पंथ आम्नाय में स्त्रियाँ प्रक्षाल नहीं करती हैं। उनके गुप्त शरीर से अशुचिस्राव होता रहता है। यह उनके शरीर का धर्म है। किसी कारणवश पुरुषों के शरीर से भी अशुचिस्राव होने पर पुरुष भी प्रक्षाल नहीं कर सकते तो फिर महिलाएँ कैसे कर सकती है। अर्थात् नहीं कर सकती हैं।

विधि- हिन्दी में हरजसरायकृत अभिषेक पाठ पढ़ते हुए सूती शुद्ध स्वच्छ वस्त्र खण्ड से जिन बिम्ब का प्रोक्षण करना चाहिए। तथा

पापाचरण तज नहवन करता चित्त में येसे धरूँ।
साक्षात श्री अर्हंत का मनो नहवन परसन करूँ॥

पढ़ते हुए अभिषेक करना चाहिए। तथा 'ऐसे विमल परिणाम' होते पढ़ते हुए जिन बिम्बों का मार्जन करना चाहिए।

संस्कृत में आ. माघनंदी कृत अभिषेक पाठ के अनुसार श्रीमन्नतामर शिरस्तट रत्न दीप्ति .... छदोच्चारण पूर्वक कायोत्सर्ग किया जाता है। सद्भावों की प्राप्ति की प्रतिज्ञा हेतु पूजन की थाली में पुष्प क्षेपण कियाजाता है। तदुपरान्त चौकी/पाषाण शिला पर "श्री" लिखा जाता है। पश्चात् थाली/थाली सहित सिंहासन स्थापित किया जाता है। उस सिंहासन पर अत्यन्त विनयपूर्वक जिन प्रतिमा विराजमान की जाती है। गंधोदक अभिषेक का जल ढुले नहीं इसलिए सिंहासन को थाली में रखा जाता है। इसलिए थाली और सिंहासन मिल कर स्नान पीठ कहलाता है। थाली के चार कोणों पर अग्नि द्वारा प्रासुक किए

शुद्ध जल से भरे स्वस्तिक अंकित चार कलश स्थापन किए जाते हैं। पश्चात् पीठ स्थित जिनेन्द्र को अभिषेक के पूर्व अर्घ्य चढ़ाया जाता है। तदुपरान्त मंत्रोच्चार पूर्वक उन स्थापित कलशों से अभिषेक किया जाता है। अभिषेकोपरान्त अर्घ्य और पुष्प क्षेपण किया जाता है। प्रतिमा का वस्त्र खण्ड से मार्जन कर पुनः वेदी में विराजमान किया जाता है। और अंत में अर्घ्य चढ़ाया जाता है। शान्ति धारा करना हो तो थाली में रखे हुए यंत्रजी के सम्मुख शांति धारा करें। शांति धारा के पश्चात् मध्यमा और अनामिका अंगुलियों से गंधोदक मात्र ललाट पर ही लगावें संपूर्ण वदन पर नहीं लगावें।

अभिषेक के समय प्रतिमाजी पर वस्त्र खण्ड नहीं रखा जाता है और मार्जन के समय वस्त्र खण्ड से प्रतिमा को आवरित नहीं करना चाहिए मार्जन के समय वस्त्र खण्ड को घड़ी कर अपने हाथ में इस तरह पकड़ना चाहिए कि प्रतिमाजी का विनय पूर्वक मार्जन भी हो जावे और प्रतिमा वस्त्र से आवरित न हो।

"श्री" लेखन पाषाण/चौकी पर ही करना चाहिए थाली में नहीं, क्योंकि श्री लेखन करने के छंद में "प्रस्तर" पर लिखने का विधान है। स्वस्तिक भी थाली में अंकित नहीं करना चाहिए। थाली में चंदन आदि से श्री/स्वस्तिक अंकित कर प्रतिमा विराजमान कर अभिषेक करने से श्री/स्वस्तिक का चंदन जल में घुल जावेगा और जिन प्रतिमा से स्पर्शित होगा। इससे अभिषेक करने वाले को चंदन मिश्रित जल से अभिषेक करने का दोष आवेगा। चंदन मिश्रित जल को सर्वार्थसिद्धि और

तत्वार्थ राज वार्तिक में कुच्प्य/वस्त्र माना गया है। इसलिए जिन प्रतिमा को वस्त्र पहनाने का दोष लगेगा तथा न लौट में स्वस्तिक अंकित कर प्रतिमाएँ नहीं रखना चाहिए। यदि थाली में से जल का निकास भी किया गया जिससे चंदन मिश्रित जल प्रतिमा को स्पर्श न करेगा। ऐसा भी कार्य करना अनुचित ही है। क्योंकि गंधोदक केशरवर्णी हो जावेगा।[१] अभिषेक के कार्य हो जाने के पश्चात् आने वाले पूजकों को संशय पैदा करेगा कि प्रतिमा पर केशर तो नहीं लगाई जाती है। तथा केशर वर्णी गंधोदक के माध्यम से भोले जीवों द्वारा केशर मिश्रित जल से अभिषेक करने की परम्परा का जन्म हो सकता है। अतः केशर से थाली में श्री/स्वस्तिक अंकित करना अनुचित है।

गंधोदक- अभिषेक के उपरान्त जो जल जिन प्रतिमा के स्पर्श से पवित्र होकर थाली में बचा रहता है वह गंधोदक कहलाता है। तीर्थंकरों के सुरभिनाम कर्म के उदय से शरीर अतिशय सुगंधित रहता है। प्रतिमा में प्रतिमित की स्थापना होने से प्रतिमा से स्पर्शित जल भी सुगंधित हो जाता है। इस अभिप्राय से इसे गंधोदक कहते हैं। अभिषेक की थाली में श्री नहीं लिखा जाता है। क्योंकि वह सिंहासन का प्रतीक है। श्री पाषाण शिला अथवा चौकी पर ही लिखा जाता है।

शान्ति धारा- शान्ति धारा में लौकिक कल्याण की कामना है। इसलिए शान्ति धारा जिनेन्द्र प्रतिमा पर नहीं की जाती है। मात्र यंत्र के सम्मुख की जाती है। शान्ति धारा पूजन विधि का अंग नहीं है। शांति धारा करने का प्रचलन भट्टारकीय युग से

प्रारंभ हुआ है। उस युग में जिनेन्द्र के पूजक भौतिक सुख के लिए सरागी देवी-देवताओं की पूजा करने लगे और वीतराग मार्ग से विमुक होने लगे ऐसी विषम परिस्थिति में भट्टारकों ने जिनेन्द्र पूजकों को वीतराग मार्ग में ही स्थित रहने के लिए शान्ति धारा का प्रचलन किया। पूजक जिनायतन में ही रहे अनायतन में न जावे तथा जिनेन्द्र को छोड़कर रागी-द्वेषी देवी-देवताओं की पूजा न करें।

पूजन के भेद/प्रकार- वीतराग जिनेन्द्र परमात्मा की पूजन आलम्बन की अपेक्षा १ सालम्बन २ निरालम्बन दो प्रकार की है। मन वचन और काय को वश में रखते हुए शुद्ध प्रासुक द्रव्यों को निक्षेपण करते हुए जिनेन्द्र के स्वरूप का स्तवन करना सालम्बन पूजा है। मन को वश में रखते हुए प्रासुक द्रव्यों के बिना वचन काय वीतराग स्वरूप का ध्यान करना निरालम्बन पूजा है। सागर भूमिका में सालम्बन और अनगार भूमिका में निरालम्बन पूजन की प्रधानता है।

भाव एवं द्रव्य की अपेक्षा- भावपूजा और द्रव्य पूजा ये दो प्रकार है।

भाव पूजा- "भावः चित् परिणामः"[६०] के अनुसार आत्मा के चैतन्य परिणाम को भाव कहते हैं और उस चैतन्य के शुद्ध स्वभाव की पूजा करना भाव पूजा है। अर्थात् चैतन्य के शुद्ध स्वरूप के चिंतनपूर्वक उसमें अचिंत्य हो स्थिर होना भाव पूजा है। भाव पूजा के समय पूजक समस्त रागादि विकल्प जाल रहित हो परम समाधि के बल से स्व शुद्धात्म स्वभाव को

आराधक और उसे ही आराध्य बनाकर स्वरूप स्थिरता की वृद्धि करता है।[६१] पूजन करते समय पूजक कार्य परमात्मा के गुणों के अनुरूप ही निज कारण परमात्मा के गुणों को देखता है। अपनी परिणति को कार्य परमात्मा की भांति अभेद रत्नत्रय रूप करता है। निज परिणति का शुद्ध होना ही वास्तव में भावपूजा है। अर्हंत आदि के गुण स्तवन को भावपूजा कहना अशुद्ध निश्चयनय है। तथा नित्य निरंजन निर्विकार चित चमत्कार परम चैतन्य के अनुभव से उत्पन्न सहज आनंद स्वभाव रूप सुखामृत के आस्वादरूप जो भाव हैं, उसे भाव पूजा कहना शुद्ध निश्चय नथ हैं।[६२]

द्रव्य पूजा- भाव पूजा के साथ तदरूप काय चेष्टा होना द्रव्य पूजा है। जिनेन्द्र को नमस्कार हो कहना, हाथ जोड़ना, मस्तक झुकाना आदि बाह्य प्रवर्तन द्रव्य पूजा है। अर्थात् भाव पूजारूप परिणामों के अनुरूप काय चेष्टा के परिणामों को द्रव्य पूजा कहा जाता है। मैं आराधक हूं और अर्हंत आदि आराध्य हैं ऐसा भेद कर आराध्य के अनंत गुणात्मक द्रव्यत्व गुणत्व और पर्यायत्व का गुणानुवाद करना खड़े रहना विनम्रता से प्रणाम करना तथा मंत्रोच्चर पूर्वक प्रासुक द्रव्य क्षेपण करना उपचार से द्रव्य पूजा है।

जिनेन्द्र देव का स्तवन/भक्ति/पूजा मन-वचन-काय की शुद्धि पूर्वक शिरोनति एवं आवर्तादिक करना द्रव्य पूजा कहा जाता है। इसलिए शुद्ध मन से भगवान के गुणों का स्मरण करना मन से पूजा है। शुद्ध वचनों द्वारा उनके गुणों का महत्व

प्रगट करना वचन से पूजा है। शुद्ध काय से हाथ जोड़ना नमस्कार करना प्रदक्षिणा देना काय से पूजा है।

भगवान जिनेन्द्र की पूजा अपने शुद्ध गुणों से की जाती है और जल चंदन आदि द्रव्य उन गुणों के प्रतीक स्वरूप हैं। अर्थात् भाव शुद्धि के प्रतीक है। अथवा जल चंदन आदि द्रव्य आत्म हितकर नहीं है। इसलिए त्याग के प्रतीक होने से जिनेन्द्र के समक्ष क्षेपण किये जाते हैं।

निश्चय और व्यवहार की अपेक्षा पूजा दो प्रकार की है -१ निश्चय पूजा २ व्यवहार पूजा।

निश्चय पूजा- निश्चय की अपेक्षा पूज्य और पूजक अभेद होते हैं। उसमें न कोई पूज्य है और न कोई पूजक है। पूजक ही पूज्य है और पूज्य ही पूजक है। इसलिए पूजक का मन परमेश्वर स्वरूप भगवान आत्मा में और परमेश्वर स्वरूप भगवान मन में मिल जाता है।[६३] जो परमात्मा है वह ही मैं हूं तथा जो स्वानुभव गम्य मैं हूँ वह ही परमात्मा है। इसलिए मैं ही मेरे द्वारा पूजा/ उपासना किये जाने योग्य हूँ।[६४] अभेद नय की अपेक्षा अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु अवस्थाएँ आत्मा की ही हैं। अतः मेरा आत्मा ही मुझे शरणभूत है।[६५]

निश्चय पूजा में कारण परमात्मा निजको कार्य परमात्मा रूप अनुभव करता है। पूज्य और पूजक में अभेदता के कारण सर्व विकल्पों का अभाव होने से पूजक की वीतराग निर्विकल्प स्वरूप में लीनता बढ़ती जाती है। पूजक अपने परमात्म स्वरूप ज्ञान आदि अनंत गुणों का अनुभव करता है। इस आत्मानुभव

का नाम ही निश्चय पूजा है।

व्यवहार पूजा- व्यवहार पूजा के द्रव्य पूजा और भाव पूजा ये दो भेद हैं।[६६] वचन काय को संकोच/बाह्य विषयों से अपने उपयोग को हटाकर जिनेन्द्र प्रतिमा के आलम्बन से उनके गुणों का स्वतन पूर्वक उनके सम्मुख प्रासुक जल आदि अष्ट द्रव्य क्षेपण करना द्रव्य पूजा है। और वचन काय के साथ मन को वश में रखते हुए उपयोग को निज त्रैकालिक शुद्ध स्वभाव में स्थित करना भाव पूजा है।

निश्चय पूजा पूर्वक पंच परमेष्ठी, जिन धर्म, जिन चैत्य, जिन चैत्यालय, और जिन श्रुत का गुणानुवाद जल आदि अष्ट द्रव्यों के माध्यम से करना व्यवहार पूजा है। अथवा निश्चय पूजा को दर्शाने वाला बाह्य पूजन रूप प्रवर्तन व्यवहार पूजा है। पूजक मोक्ष मार्ग की साधना के लिए दुर्ध्यान रहित प्रवर्तन द्वारा पूज्य परमात्माओं के द्रव्यत्व गुणत्व और पर्यायत्व की प्रतीति करता है तथा जिस विधि विधान से कार्य परमात्मा बना जाता है, उसका अनुकरण/अनुशरण कर स्वयं परमात्मा बनने का सफल प्रयास करता है।

पूजक को अपने भावों की निर्मलता के लिए तद्नुरूप द्रव्य, भाव, आलम्बन और प्रवर्तन की शुद्धि आवश्यक है। पूजक के वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के प्रति अचल/दृढ़ श्रद्धान द्रव्य शुद्धि है। स्वानुभूति की प्राप्ति का ध्येय भाव शुद्धि है। ऋषभ नाथ आदि तीर्थंकरों के गुणों का स्तवन आलम्बन शुद्धि है। पूजन में उपयोग का स्वरूप में स्थिरता का प्रवर्तन प्रवर्तन शुद्धि है।[६७]

इसी शुद्धि पूर्वक जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और अर्घ्य की शुद्धि, वस्त्र शुद्धि, उपकरण शुद्धि सार्थक है। जिनेन्द्र भगवान की पूजा द्रव्य एवं भाव दोनों की सापेक्षता से करना चाहिए।[६८]

द्रव्य पूजा तीन प्रकार की है- १ सचित्त पूजा २ अचित्त पूजा ३ सचित्ताचित्त पूजा।

१ सचित्त पूजा - प्रत्यक्ष सचेतन जिनेन्द्र भगवान और गुरु आदि के आलम्बन द्वारा उनके गुणों का यथायोग्य पूजन करना सचित्त पूजा है। समवशरण में जाकर साक्षात् अर्हंत की पूजा करना एवं अपने घर आये दिगम्बर मुनिराज की पूजा करना सचित्त पूजा है। आगम में सचित्त पूजा घर-घर में प्रतिदिन करने को कहा है। उसका प्रयोजन यह है कि प्रत्येक घर में प्रतिदिन नवधा भक्ति पूर्वक मुनियों की पूजन करना चाहिए। अर्थात् प्रतिदिन मुनिराजों को आहार दान देना चाहिए। जिससे आहार दान की परम्परा वर्तती रहे। घर में ही चैत्य/भगवन विराजमान कर हरित काय से/सचित्त पुष्पादि से पूजन करना सचित्त पूजन नहीं है। अपितु वह अनुचित्त है।

अचित्त पूजा - तीर्थंकर की प्रतिमा और द्रव्य श्रुत के माध्यम से उनके गुणों की पूजन करना अचित्त पूजा है।

मिश्र पूजा- उपर्युक्त दोनों ही पूजा करना मिश्र पूजा है। निक्षेप की अपेक्षा व्यवहार पूजा के छः भेद हैं -

१ नाम पूजा २ स्थापना पूजा ३ द्रव्य पूजा ४ क्षेत्र पूजा ५

कालपूजा ६ भाव पूजा।

नाम पूजा- अर्हंतादिक के नामोच्चारण के आलम्बन से प्रासुक द्रव्यों के द्वारा उनके स्वरूप की पूजन करना नाम पूजा है।

स्थापना पूजा- प्रतिमा में अर्हंतों के गुणों की स्थापना कर उनके गुणों की पूजा करना स्थापना पूजन है।

द्रव्य पूजा- अर्हंतादि के सम्मुख प्रासक द्रव्य निक्षेपण कर उनके गुणों की पूजा करना द्रव्य पूजा है।

क्षेत्र पूजा- तीर्थंकरों की पंच कल्याणक भूमि पर स्थित तीर्थं चिन्ह आदि के माध्यम से जिनेन्द्र की पूजा करना क्षेत्र पूजा है।

काल- तीर्थंकरों की पंच कल्याणक तिथियों एवं अष्टाह्निका आदि पर्व के दिनों में जिनेन्द्र की विशेष पूजा करना काल पूजा है।

भावपूजा- मन वचन काय को वश में रखते हुए अर्हंतादिक के स्वरूप का ध्यान करना भाव पूजा है।

महापुराण में आचार्य ने पूजा के पाँच प्रकार बताये हैं- १ नित्यमह (सदार्चन) २ सर्वतोभद्र (चतुर्मुख) ३ कल्पद्रुम ४ अष्टाह्निक ५ ऐंद्रध्वज

नित्यमह- अपने घर से प्रासुक द्रव्य ले जाकर अष्ट द्रव्य से जिनेन्द्र की नित्य पूजन करना नित्य पूजा है। अथवा चैत्य-

चैत्यालय निर्माण एवं प्रतिष्ठित कराना और सत् पात्रों को दान देना नित्यमह पूजा है।

सर्वतोभद्र पूजा- मुकुटबद्ध राजाओं द्वारा महायज्ञ कर जिनेन्द्र के स्वरूप का स्तवन करना सर्वतोभद्र पूजा है।

कल्पद्रुम पूजा- चक्रवर्ती राजा द्वारा किमिच्छिक दान पूर्वक जगत् के जीवों की आशाएँ पूर्ण करते हुए वीतराग देव की पूजा करना कल्पद्रुम पूजा है।

अष्टाह्निक पूजा- अष्टाहिन का पर्व के दिनों में स्थानीय जिन चैत्य और जिन चैत्यालय को ही नंदीश्वर द्वीप के चैत्य-चैत्यालय मानकर उनके आलम्बन से अर्हंतादि के गुणों की पूजा करना अष्टाहिन का पूजा है।

ऐन्द्रध्वज पूजा- तेरह द्वीपा के अकृत्रिम चैत्यालयों के शिखरों पर ध्वजारोहण पूर्वक जिनेन्द्र की पूजा करना ऐन्द्रध्वज पूजा है।

पूज्य के विविध गुणों के आलम्बन पूर्वक अत्यन्त भक्ति से जो गुणानुवाद होता है अथवा जिनद्रव्यों के माध्यम से पूजा संपन्न होती है उसे द्रव्य पूजा कहते हैं। खड़े होना प्रणाम करना, प्रदक्षिणा देना स्तुति करना द्रव्य पूजा के अवयव है।

पूजन विधि और उसके अंग- अभिषेक के पश्चात् जिनेन्द्र के सम्मुख प्रथम थाली में कल्याण सूचक/आत्म स्थिरता के प्रतीक स्वरूप नो कोटि से एकाग्रता के प्रतीक स्वरूप नो स्वस्तिक बनाए जाते हैं। नो स्वस्तिकों के ऊपरी भाग में अर्द्ध चंद्राकार

रचना और उसके मध्य में बनाये गये तीन बिन्दु इस बात के प्रतीक हैं कि पूजक का रत्नत्रय इतना प्रगट है शेष प्रगट करना है। उन स्वस्तिकों में देवों का/पूज्य का सकल्प करना अन्यथा श्रद्धान है। जिस प्रकार ठोडा के चावलों में तीर्थंकरों का सकल्प करना मिथ्यात्व है। पूजक थाली में बनाए गए स्वस्तिकों के माध्यम से पूजा नहीं करता है अपितु वेदी में विराजमान जिन प्रतिमाओं के माध्यम से उनके गुणों की उपासना करता है। तथा स्वस्तिकों से मण्डित थाली के समान ऊँचाई पर द्वितीय थाली रखता है जिसमें कि अष्ट द्रव्य क्रमशः रखे गये हैं। स्वस्तिक अंकित थाली अर्थात् जिसमें द्रव्य चढ़ाया जाता है उसे नीचे रखना और सजी द्रव्य सामग्री की थाली को ऊपर रखना अनुचित है। दोनों थालियों को समान ऊंचाई पर रखना चाहिए। आप ही विचार करें जो द्रव्य चढ़ाया/क्षेपण किया गया है वह पवित्र/सोना हो गया है और चढ़ाने हेतु रखा है वह लोहा है। पवित्र द्रव्य की थाली को पवित्र होने वाली द्रव्य सामग्री की थाली से नीचे रखना क्या उचित है ? अर्थात् नहीं रखना चाहिए। पूजक ने अपना अकषाय भाव प्रगट करने हेतु पूजा का आलम्बन लिया है।

जिनेन्द्र पूजन जल, चन्दन आदि अष्ट द्रव्यों से की जाती है। एक द्रव्य में आठ का संकल्प करके भी पूजन की जा सकती है। किन्तु स्वच्छन्दता और लोभ पोषण के लिए नहीं। अष्ट द्रव्यों में कूप आदि के जल को क्षीरसागर का जल केसर युक्त जल को सुगंधित जल/चन्दन, सफेद चावलों को मोतियों का पुंज, पीले चावलों को सुरतरू के पुष्प गिरी की सफेद चिटक

को विविध मिष्ठान, पीले चिटक को रत्न दीपक, चंदन की छीलन को दशांग धूप, बादाम आदि में विविध प्रकार के फलों का संकल्प कर पूजा की जाती है। हिंसा एवं बहुत आरम्भ से बच कर प्रासुक द्रव्य और शुद्धि का विवेक रखते हुए भावों की शुद्धि/वीतरागता की प्राप्ति हेतु पँचांग पूजा की जाती है।

पूजा के अंग - पूजा के पाँच अंग हैं - १ आह्वानन् २ स्थापन ३ सन्निधिकरण ४ अष्ट द्रव्य चढ़ाना ५ शान्ति पाठ

आह्वानन् - वीतराग स्वरूप/छवि को दृष्टि के समक्ष/बुद्धि में उतारने/लाने का प्रयत्न करना आह्वानन् है।

स्थापन् - दृष्टि में उतारे हुए स्वरूप को बनाए रखना हृदय में स्थापित करना स्थापन है।

सन्निधिकरण - स्थापित स्वरूप के निकटवर्ती होना और उससे आनंदित होना अर्थात् निज स्वरूप में लीनता सन्निधिकरण है।

ठोना में इन्हीं तीन क्रियाओं के सूचक अथवा त्रियोग की एकाग्रता के प्रतीक स्वरूप तीन-तीन पुष्प क्षेपण करते हैं। उन पुष्पों में जिनेन्द्र की कल्पना/संकल्प करना गृहीत मिथ्यात्व है। ये पुष्प पूजन की थाली में भी चढ़ाये जा सकते हैं।

पूजन विधि में विविध आलम्बनों में अष्ट द्रव्य भी हैं। जो कि प्रासुक और अहिंसा मूलक हैं। हिंसात्मक एवं बहुत आरम्भ से निर्मित पदार्थों का चढ़ाना/क्षेपण करना सर्वथा अनुचित है। पूजन में अपने परिणाम निर्मल रखने की प्रधानता है न कि मात्र

द्रव्य चढ़ाने/क्षेपण करने की/द्रव्य का आलम्बन उपयोग को केन्द्रित बनाए रखने के लिए है। अष्टक के प्रत्येक छन्द में स्तोता जिनेन्द्र स्तवन करता हुआ अपवर्ग/मोक्ष की भावना भाता है। छन्दोच्चारण के साथ ही तदनुसार द्रव्य सामग्री लेता है।

पूजन में प्रयुक्त अष्ट द्रव्यों का क्रम निर्देश - जिनेन्द्र पूजन पद्धति में अष्ट द्रव्य से पूजन करने की परम्परा अति प्राचीन है। आचार्य कुन्द कुन्द विरचित दश भक्ति पाठों में दिव्य अष्ट द्रव्यों से पूजन करने का उल्लेख है। दिव्य अर्थात् देवोपुनीत है। जो कि कल्प वृक्षों से लाए गए होने से उचित और प्रासुक ही होते हैं। पूजनों में उल्लेख है -

कल्प वृक्ष के कुसुम मनोहर
सुरतरु के सुमन समेत -

प्राचीन पूजन रचनाकारों ने दिव्य अष्ट द्रव्य से पूजन करना स्वीकारा है।

पूजों पद अरहंत के पूजों गुरु पदसार
पूजो देवी सरस्वती नित प्रति अष्ट प्रकार

उदक चन्दन तन्दुल पुष्प .....

पानीय चन्दन सदक्षत, पुष्प पुञ्ज नैवेद्य
दीपक धूप फल ब्रजेन।

जलगंधाक्षतैपुष्पैश्चरुदीप सुधूप कै
फलैर्ध्य जिनमर्चे ..... | अभिषेक पाठ माघनंदी

अच्छाम्भः शुचिचन्दनाक्षत सुमैनैवेद्यकैश्चरुभिः।

दीपैर्धूप फलोत्तमै .... विनायक यंत्र पूजा। इन्हीं अष्ट द्रव्य चढ़ाने के क्रम का भी महत्व है। प्रथम चार द्रव्य से चार घातिया कर्मों के क्षय और अनंत चतुष्टय की प्राप्ति तथा अन्तिम चार से अघातिया कर्मों के क्षय और मोक्ष प्राप्ति का क्रम स्पष्ट झलक रहा है।

पूजक बाह्य और आभ्यन्तर उभय द्रव्यों से जिनेन्द्र पूजन कर पूज्यत्व की ओर अग्रसर होता है। बाह्य में जल से फल एवं अर्घ्य तक बाह्याभ्यतर के क्रमानुसार -

जल-निर्मल भक्ति, चन्दन-शील-स्वभाव, अक्षत्-उज्जवल परिणाम, पुष्प-भक्ति-आनंद, नैवेद्य-भक्ति रस में तृप्तता, दीप-सम्यक् श्रद्धान, धूप-धर्म प्रभावना का आनंद, फल-शुभ चिन्तन, अर्घ्य-सम्यक अष्ट द्रव्य[६१] इस प्रकार उभय अष्ट द्रव्यों से पूजन कर पूजक निज प्रयोजन सिद्ध कर लेता है।

पूजन और अष्ट द्रव्य- द्रव्य पूजा में अष्ट द्रव्यों से पूजन करना अत्यन्त महत्वपूर्ण और मार्मिक प्रतीत होता है। पूजक जिस मुक्ति की प्राप्ति के लिए वीतराग जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करता है उन मुक्त आत्माओं/सिद्ध परमात्माओं के गुण आठ हैं। जिन दोषों/आवरणों को हटाना चाहता है वे आवरण भी आठ हैं। तथा भोगोपभोग के पदार्थ भी आठ हैं। आठ गुणों की प्राप्ति और आठ दोषों के निवारण हेतु अष्ट द्रव्यों से पूजन करना प्रतीत होता है। पूजक ने गुणों की प्राप्ति और दोषों के परिहार हेतु जल आदिक अष्ट द्रव्यों को प्रतीक माना है। जल चन्दन आदि द्रव्यों के गुणों की, आत्मा के गुणों में एकदेश

व्याप्ति है। अर्थात् आत्मा के गुणों की भाँति इन द्रव्यों में गुण हैं। अथवा ये द्रव्य आत्म हित के हेतु नहीं होते इसलिए इन्हें क्षेपण कर पूजन की जाती है। गुणों की प्राप्ति और उनके आवरण को वारण करने के लिए इन्हें क्रमिक चढ़ाया जाता है। अष्ट द्रव्य भोग/प्रसाद के लिए नहीं चढ़ाए जाते अपितु अपनी लोभ-कषाय की हानि और मन को पूजन में लगाने के लिए चढ़ाए जाते हैं।

जल-- आयुर्वेद के अनुसार जल--परिश्रम, ग्लानि, मूर्च्छा, पिपासा, अजीर्ण नाशक है। तथा बल, तृप्ति दायक, हृदय रोगहारी, नित्य हितकारी, शीतल, हल्का, स्वच्छ, अमृत है। आत्मा का ज्ञान भी, भव परिश्रम, पर्याय ग्लानि, विषय मूर्च्छा, भोग पिपासा, उपभोग अजीर्ण नाशक है। आत्मबल, स्वभाव तृप्ति, आत्म प्रिय, नित्य-सुखद, शांत, निराश्रव एवं मुक्त स्वरूप अमृत है।

आयुर्वेदिक ग्रंथ अष्टाँग हृदय में जल को 'बुद्धि प्रबोधनम्'[७०] कहा है। ज्ञान स्वयं आत्म प्रबोधकर है। जल से दृष्टि निर्मल होती है।[७१] ज्ञान से आत्म/तत्व दृष्टि में निर्मलता आती है। जल से शारीरिक प्रसन्नता होती है[७२] तो ज्ञान से आत्म प्रसन्नता होती है। जल शीतल तृषानाशक, शरीर और इन्द्रियों को तृप्तिकारक है।[७३] ज्ञान आत्म शांतिकारक, विषयों की तृषानाशक, अतीन्द्रिय आनंदकारक है। जल त्रिदोष हर, बुद्धि वर्द्धक है।[७४] ज्ञान मिथ्या दर्शन-ज्ञान-चारित्र त्रिदोष हर है आत्म प्रतीति वर्द्धक है। जल हल्का है, तृषा नाशक है, बलदायक है।[७५] ज्ञान

कर्मभार रहित होने से हल्का, विषय तृषाहारी, आत्मप्रिय, आत्मबल वर्द्धक है। हिमालय से निकली नदियों का जल अमृत समान होता है।[७६] आत्म स्वभावरूपी हिमालय से उत्पन्न ज्ञान जल अमृत है। जल दाह विनाशक शीतल है।[७७] ज्ञान राग आग की दाह को शमन कर शांति दायक है। जल जीवों का प्राण रूप है, जल के आश्रित जीवन है। किसी भी अवस्था में जल का वारण नहीं किया जा सकता।[७८] ज्ञान आत्मा का प्राण है, किसी भी अवस्था में ज्ञान का वारण नहीं किया जा सकता है। अन्न बिना तो कुछ समय जीवन की सिद्धि हो सकती है किन्तु जल बिना नहीं। चारित्र प्रवर्तन आदि बिना आत्म सिद्धि तो एकदेश कुछ समय तक हो सकती है। किन्तु आत्म ज्ञान बिना नहीं हो सकती।

पूजक ने प्रत्येक पूजन में जल को जन्म-जरा मृत्यु के विनाश का प्रतीक स्वीकार किया है। जन्म-जरा-मृत्यु का कारण अज्ञान है और अज्ञान का कारण ज्ञानावरण कर्म का उदय है। जल को ज्ञान का प्रतीक अन्यत्र भी कहा है विज्ञान निर्मल नीर कहा है[७९] ज्ञानाम्बु,[८०] ज्ञान पयोनिधि[८१] भी कहा है।

कविवर दौलतरामजी ने तो ज्ञान को सुख का कारण और जन्म, जरा, मृत्यु दोषों को निवारण करने के लिए ज्ञान को परम अमृत कहा है।[८२]

पूजक जल को ज्ञान का प्रतीक मानकर जन्म, जरा, मरण, रहित, अनंत ज्ञान सम्पन्न परमात्मा को पूजता है। वह अपने अनंत ज्ञान को प्रगट करने और ज्ञानावरण को क्षय करने के

लिए जल निक्षेपण कर उनकी पूजन करता है।

प्रथम जल से पूजन प्रारम्भ करने का प्रयोजन ऐसा प्रतीत होता है कि पहले वस्तु स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए। ज्ञान बिना गुणों की प्राप्ति और दोषों का परिहार नहीं हो सकता है। अथवा ''आत्मा के सब गुणों में ज्ञान गुण पूज्य है। व्याकरण में भी ऐसा नियम है कि जो पूज्य हो उसे पहले कहना।''[८३] इसलिए सबसे पहले ज्ञान प्राप्ति और ज्ञानावरण क्षय के लिए जल से पूजन की है। यद्यपि पहले मोह का क्षय होता है। किन्तु ज्ञान सब गुणों का राजा है इसलिए ज्ञान प्राप्ति की बात प्रथम कही।

चन्दन-- वर्णकारक, आल्हाद कारक/जनक, शीतल है। परिश्रम शोथ, कफ, विष, तृषा एवं दाह नाशक है। दर्शन-अंतः स्वरूप दर्शक, आनंदजनक, शांत है।[८४] भ्रमण का परिश्रम, पराश्रित, परिणामों का शोथ, पर भावों का कफ, पर सुख विष, विषयों की वांछा तृषा एवं पाप भावों की दाह/नाशक है। उसका प्रतीक चन्दन है।

भव के आतप को दूर किए बिना जीव स्व स्वरूप की ओर नहीं आ सकता है। स्व स्वरूप की ओर आए विना दर्शन गुण स्व सम्वेदन आत्म-सम्वेदन आत्म-प्रतिभाष-अंतः चित् प्रकाश है जो कि दर्शनावरण कर्म के क्षय/क्षयोपशम से होता है।[८५] वह नहीं हो सकता है। भव के आताप से तपित परिणाम से जीव आत्मा स्वभाव का दर्शन नहीं कर पाता है। उसे आभ्यन्तर नहीं बाह्य ही दृष्टि गोचर होता है।

आत्म स्वभाव शीतल है। मोह-राग-द्वेष सर्पों के विष के प्रभाव से रहित है। चन्दन तो उसका प्रतीक है। चन्दन पर सर्पों के समूह लिपटे रहते हैं किन्तु वृक्ष विषैला नहीं होता। आत्मा पर मोहादि नागों के समूह लिपटे रहते हैं किन्तु स्वभाव विषैला नहीं होता है।

आत्म स्वभाव अत्यन्त शीतल है। इसलिए पाप का आताप उसे तप्त नहीं कर सकता है। आत्म दर्शन विहीन जीव पाप के आताप से दुःखी है। उन्हें शीतलता और शांति देने में समर्थ जिनेन्द्र के वचन है।[८६]

चंदन शोथ हर वर्ण कारक है। दर्शन भी पराश्रितता की शोथ हर कर आत्मा के स्वाभाविक स्वरूप प्रगट करता है। जैसे कफ, विष से उत्पन्न विकारों को दूर करने में समर्थ चन्दन है, वैसे विषय-कफ, कषाय विष दूर करने में समर्थ अंतः चित् प्रकाश है।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि अंतः चित् प्रकाश स्व संवेदन स्वरूप अनंत दर्शन प्रगट करने और दर्शनावरण कर्म निवारण के प्रतीक स्वरूप चन्दन क्षेपण कर जिनेन्द्र अर्चना करता हूँ।

अक्षत-- पूर्ण अखण्ड अनंकुरण, बल, वीर्य वर्द्धक, देह स्थापक, रुचिकारक, बद्धमल नाशक है।[८७] सम्यक्त्व-पूर्ण अखण्ड, भवानंकुरित आत्म बल-वीर्य वर्द्धक, देही स्थापक, आप रूप में रुचिकर, शेष रागमल नाशक है।

पूजन में चढ़ाने हेतु अंकुरित अन्य धान्यों के होने पर भी चावल को ही श्रेष्ठ मानने के अनेक कारण मेरी समझ में आते हैं -

(१) चावल शुद्ध शुक्ल वर्ण है आत्मा भी शुद्ध, उज्जवल है। जो कि मोहनीय कर्म के अभाव और वीतराग दशा का प्रतीक है।

(२) चावल की उत्पत्ति जलाशय में जलवृष्टि के समय होती है। जल को ज्ञान का प्रतीक माना है। चित् स्वभार की उपलब्धि अविरल ज्ञान वृष्टि के आलम्बन से होती है।

(३) चावल पर तुष और लाली दो आवरण होते हैं। जिसके हटने पर उसका मूल स्वभाव प्रगट होता है। आत्मा के साथ दर्शन-मोह और चरित्रमोह दो आवरण हैं। अथवा घातिया और अघातिया ये दो आवरण हैं, उनके हटने पर पूर्ण आत्मानंद का अनुभव होता है।

यूं तो अखण्डता और अनंकुरण तो अन्य पदार्थों में देखने को मिलती है, जैसे तिल, कोदों (कुदई) आदि। किन्तु जल में उत्पत्ति और दो प्रकार के आवरण तंदुल में ही है।

संसार का बीज मोह है। जिस प्रकार बीज का नाश होने पर वृक्ष/अंकुरण नहीं होता उसी प्रकार मोह का क्षय होने पर भव धारण नहीं होता है। दर्शन-पूजन में चावल ही क्यों चढ़ाते हैं ? इसका हेतु आबाल गोपाल प्रसिद्ध है कि तुष के हटने पर चावल पूर्ण और अखण्ड बना रहता है तो भी वह अंकुरित नहीं होता

है। मोह का तुष हटने पर सम्यक्त्व गुण प्रगट होता है जिससे वह पूर्ण, अखण्ड आत्म स्वभाव को प्राप्त करता है। और भव भ्रमण बंद हो जाता है। इसलिए अपने पूर्ण आत्म स्वभाव की प्राप्ति एवं भव निरोध के लिए दर्शन-पूजन में चावल चढ़ाए जाते हैं।

तुष विहीन चावलों में इतना बल प्रगट हो जाता है कि वह पुनः वृक्ष पर्याय को धारण नहीं करता है। मोह विहीन आत्मा सम्यक्त्व गुण के बल से पुनः भव रूपी वृक्ष पर्यायों को धारण नहीं करता है। अर्थात् वह पुनः संसार परिभ्रमण नहीं करता है। चावलों को अब कुछ त्यागने को शेष नहीं बचा है। आत्मा को भी मोह के क्षय से होने वाला सम्यक्त्व गुण प्रगट होने पर बुद्धि पूर्वक त्यागने को कुछ नहीं है। तुष विहीन तंदुल मधुर उपभोग के योग्य होते हैं और मोह विहीन आत्मा ही अतीन्द्रिय आनंद के योग्य होता है। तुष के अभाव में ही तन्दुल का श्रद्धान समीचीन है तो मोह, क्षोभ विहीन आत्मा का श्रद्धान ही सत्य श्रद्धान है। तंदुल शारीरिक बल-वीर्य वर्द्धक, देह स्थापक है। सम्यक्त्व आत्म बल वीर्य वर्द्धक एवं देही/आत्मा स्थापक है। चावल उदर में मल को नाश करता है, तो सम्यक्त्व आत्मा में स्थित कर्म मल का नाश करता है। चावल रुचिकारक है, तो सम्यक्तव आप रूप में रुचि कारक है।[८८] चावल त्रिदोष नाशक, सुख स्थापक है। सम्य्कत्व-मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम त्रिदोष[८९] नाशक है, और अतीन्द्रिय सुख स्थापक है।

अतः उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि सम्यक्त्व गुण एवं

मोह क्षय के प्रतीक स्वरूप तंदुल/अक्षत को प्रतीक स्वरूप मानकर पूजक अपने में सम्यक्त्व गुण को प्रगट करने, मोह कर्म क्षय करने एवं अक्षय पद प्राप्ति हेतु चावल/अक्षत निक्षेपण करता है।

पुष्प-- दाह, विष, तृषा, विकार विस्फोटक एवं त्रिदोष नाशक है। शीतल, हृदय प्रिय, ग्राही, बल वीर्य वर्द्धक, वर्णोत्तम कारक है। आत्मा का अनंद बल, राग की दाह, परिग्रह-विष, भोग-तृषा, विषय-विकार, कषाय विस्फोटक, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम नाशक है तथा शांतिस्वरूप, स्वप्रिय अनंत गुणग्राही, अनंतबल दायक, अनंत वीर्यवान, स्वभाव को उज्जवल कारक है।

पुष्प में वह बल है जिसमें नियमतः फल प्रगट होना है। पुष्प प्रगट होने से फल की प्राप्ति में होने वाले सभी विघ्न समाप्त हो गए हैं। उसमें फल अवश्य लगेगा। अनंत वीर्य में वह सामर्थ है कि जीव नियम से सर्व कर्म रहित मोक्ष फल को प्राप्त करेगा। आत्मा की अनंत शक्ति के प्रगट न होने पर जिस कर्म का उदय निमित्त होता है वह अंतराय कर्म है। अन्तराय के क्षय होने पर अनंत दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य प्रगट होता है। वृक्ष पर पुष्प होने पर, सुरभी का दान, कोमलता का लाभ, सौन्दर्य का भोग, शीतलता का उपभोग और मोक्ष फल प्राप्ति का वीर्य प्रगट हो जाता है।[१०]

१. अंतराय कर्म के पाँच भेद हैं। दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य। दानान्तराय कर्म के क्षय से प्राणियों को अभय और अहिंसा

का उपदेशरूप अनंत दान क्षायिक दान है। पुष्प विकसित होकर अनंत भ्रमरों को अपने ऊपर निर्भयता से बैठाकर उन्हें पराग देता है। जो अभय और अहिंसा का प्रतीक है।

२. लाभान्तराय कर्म के क्षय से कबलाहार बिना केवली को शरीर को स्थिति में कारणभूत परम सूक्ष्म दिव्य अनंत पुद्गलों का प्रति समय में सम्बन्धित होना क्षायिक लाभ है।[११] पुष्प में वृक्ष से भिन्न काँति लिए पुद्गलों का सम्बन्ध क्षायिक लाभ को सूचित करता है।

३. भोगान्तराय के क्षय से सातिशय भोग क्षायिक भोग है। इसी से, पुष्प वृष्टि, पद कमल रचना, गंधोदक वृष्टि, सुगंधित शीतल वायु, सह्य धूप आदि अतिशय होते हैं।[१२] पुष्प से पराग विकरण, सुगंधित जल निकलना, कीट/भ्रमरों के पद कमल रचना, सुगंधित वायु का बहना, पुष्प-वृष्टि। पद कमल रचना में पुष्प का उल्लेख ही है जो भोगान्तराय के क्षय का चिन्ह है।

४. उपभोग अंतराय कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाला सातिशय उपभोग क्षायिक उपभोग है। इसी से सिंहासन, छत्र, चमर, प्रभामण्डल, दिव्य ध्वनि, देव दुँदभी आदि होते हैं।[१३] पुष्प में वृंतरूप सिंहासन, पराग पुँज छत्रत्रय, उसके दल चमर, की काँति प्रभामण्डल, पुष्प में कोमलता अनित्यता का ध्वनि और भ्रमरों का गुँजन देव दुँदभी का प्रतीक है।

५. वीर्यान्तराय के क्षय से अनंत क्षायिक वीर्य होता है।[१४] पुष्प में परिपक्वता/फल प्राप्ति की सामर्थ अनंत वीर्य का द्योतक

है। अतः अंतराय कर्म के क्षय का प्रतीक पुष्प न्याय संगत है।

अंतराय कर्म के अभाव अर्थात् निरंतराय/निर्विघ्न कार्य सिद्धि का प्रतीक पुष्प को माना है। इसलिए पूजन का प्रारम्भ पुष्प क्षेपण से होता है। निर्विघ्न पूजन सिद्धि के प्रतीक स्वरूप पूजन के अंत में भी पुष्प क्षेपण किया जाता है। सम्भवतः इस पूजन विधान का अनुकरण ही लौकिक कार्यों में किया गया है। विवाह आदि कार्यों में पुष्पों को मांगलिक मानकर उनका स्थल-स्थल पर प्रयोग किया जाता है। प्रजा-जन राजा से मिलने जाते हैं तब थाल में पुष्प और फल भी ले जाते हैं। लौकिक जनों के सम्मान आदि में भी पुष्पों का उपयोग किया जाता है। उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि अंतराय कर्म के अभाव और निरंतराय कार्य सिद्धि का प्रतीक पुष्प है।

काम से बल वीर्य का क्षय होता है और पुष्प काम का भी प्रतीक है। इसलिए पुष्प को कामबाण विनाश के लिए भी क्षेपण कर पूजन करते हैं। इस प्रकार अनंत बल और काम एवं अन्तराय कर्म के नाश के लिए पुष्पों द्वारा जिनेन्द्र की पूजन की जाती है।

नैवेद्य-- रुचिकर, तृप्तिकर, सुखद, बलदायक, वेदना शामक, बाजीकरण, रसायन, ओजवर्द्धक, स्थापक है। ज्वर नाशक, उन्माद नाशक, भ्रम, दाह, तृषा एवं त्रिदोष नाशक है। अव्याबाध गुण-स्वरूप रुचिकर, आत्म तृप्ति कर, आनंद, बलदायक, साता/असाता वेदना शामक, स्वरूप वर्द्धक, स्थिरता कारक, शांति वर्द्धक, सुख स्थापक। क्षुधा रोग नाशक, परोन्मुखी

उन्माद नाशक, पराश्रय, भ्रम नाशक, तृष्णा दाह नाशक, इन्द्रिय भोग रोग नाशक है।

आयुर्वेद में नैवेद्य/व्यंजनों का सेवन सुखद और वेदना शामक प्रसिद्ध है। नैवेद्य का सेवन भूख मिटाता है। भूख असाता वेदनीय कर्म के उदय से लगती है। जो कि सुख में बाधक होती है। क्षुधा के शमन होने पर निर्वाद सुखानुभव होता है। वेदनीय कर्म जन्य सुख वस्तुतः दुःख है, सुख का बाधक है। वेदनीय कर्म के क्षय एवं अव्याबाध गुण की प्राप्ति हेतु उसके प्रतीक स्वरूप नैवेद्य को चढ़ाकर अव्याबाध गुण सम्पन्न देव की पूजा करते हैं।

पूजक यह सत्य समझ कर उसे छोड़ने आया है कि जीव नैवेद्य से सुखी नहीं होता है तथा अव्याबाध गुण से सुखी होता है। इसलिए उसकी प्राप्ति हेतु नैवेद्य चढ़ाकर पूजन करता है।

दीप-- मणिकाँति, सूक्ष्म, शीतल, निर्बाध प्रकाशक है। सूक्ष्मत्व गुण, सूक्ष्म, शांत, निर्बाध स्वरूप उद्योतक है।

नाम कर्म के उदय से शरीर की रचना है जो अति स्थूल है। इसमें सूक्ष्म आत्मा विराजमान है। रत्नों की प्रभा तो अति स्थूल है, जो स्थूल को ही प्रकाशित करती है। वह पर पदार्थों से बाधित है। किन्तु आत्मा का सूक्ष्मत्व गुण अति सूक्ष्म है। जो किसी से भी बाधित नहीं है। मणियों की काँति शीतल होते हुए भी सर्व में व्याप्त हो जाती है। आत्मा में सूक्ष्मत्व गुण है जिससे आत्म प्रदेश सर्व लोक में व्याप्त हो जाते हैं। इसलिए

दीप निक्षेपण करने का उद्देश्य सूक्ष्मत्व गुण प्रगट करने और नाम कर्म विनाश करने का है।

धूप-- आत्मा में ऊँच-नीच रूप विकारी भाव और आचरण सम्बन्धी विभिन्नता होने में निमित्त गोत्र कर्म का उदय है। जो अगुरू-लघु गुण प्रगट करने में बाधक है। धूप की सुगंध सर्व दिशाओं में समानरूप से विकरित होती है। वह न तो गुरु है जो एक स्थान पर एकत्रित हो पड़ी रहे और न लघु है जो आकाश में ऊर्द्ध की ओर उड़ती रहे। अगुरुलघु गुण आत्मा को भारी नहीं करता जो संसार वसुधा पर पड़ा रखे और न ही इतना लघु है कि वह अलोक में ले उड़े। इसलिए धूप की सुगंध को अगुरुलघु गुण का प्रतीक मानकर और गोत्र कर्म विनाश का चिन्ह समझकर अपने अगुरु-लघु गुण प्रकट करने और गोत्र कर्म का क्षय करने को धूप चढ़ाकर जिनेन्द्र की अर्चना की जाती है।

फल-- प्रत्येक कार्य के अंत में फल की प्राप्ति होती है। जब तक कार्य सम्पूर्ण सम्पन्न न हो जाए तब तक पूर्ण फल की प्राप्ति नहीं होती है। चतुर्थ गुण स्थान से फल का प्रारम्भ होकर चौदह वे गुण स्थान के अंत में पूर्ण फल मोक्ष परिपक्क होता है। अंत में आयु के क्षय होने पर पूर्ण फल मोक्ष परम यथाख्यात चारित्र फल की प्राप्ति होती है। अनंत चतुष्टय प्रगट होने पर भी पूर्ण मोक्ष/सिद्ध फल प्रगट नहीं होता, क्योंकि आयु कर्म का हेतु मौजदू है, उसमें अंतराय नहीं है। अन्तराय कर्म तो तेरहवें गुणस्थान से पूर्व ही क्षय हो गया है। आयु की स्थिति पूर्ण होने पर ही मोक्ष होता है। मोक्ष की प्राप्ति हेतु फल को प्रतीक माना

है। जिसका कारण यह है कि जिस प्रकार फल परिपक्व होने पर स्वयं डाली से पृथक् हो जाता है। पुनः डाली पर नहीं लगता है। उसी प्रकार मोक्ष फल प्रगट होने पर वह पुनः संसार वृक्ष पर नहीं लगता है। फलों में महत्व श्रीफल को है जो नोकर्म, द्रव्य कर्म, भाव कर्म का प्रतीक है। उसके जटा नो कर्म है, कवच द्रव्य कर्म, और लाली भाव कर्म का प्रतीक है। तीन कवचों से रहित श्रीफल सेवन के योग्य है। उसी प्रकार नोकर्म, द्रव्य कर्म, भाव कर्म रहित आत्मा भजनीय है। कवच रहित गिरी उपभोग के योग्य है। तीन प्रकार के कर्मों से रहित आत्मा ही अतीन्द्रिय आनंद के योग्य है। इसलिए मोक्ष फल प्राप्ति और आयु कर्म के क्षय के हेतु फल चढ़ाकर पूजन की जाती है।

अर्घ्य-- अर्घ्य में समुच्चय रूप से आठ गुणों की प्राप्ति और सकल कर्मों के नाश का लक्ष्य रखा है। अर्घ्य चढ़ाने के मंत्र में अनर्घ्य पद प्राप्ति के लिए अर्घ्य क्षेपण किया है।

पूजन के छंदों में जल फलादिकों के चढ़ाने के क्रमानुसार घातिया-अघातिया कर्मों के क्षय की विवक्षा ध्यान में रखकर लिखा है। कर्मों का क्रम जो तत्वार्थ सूत्र और गोम्मटसार में प्रदर्शित है। उसमें कर्मों की सत्ता और उनके कार्यों के अविनाभावी सम्बन्ध अर्थात् कौन कर्म किसकी उपस्थिति में अपना फल देता है। यह विवक्षा स्पष्ट झलकती है। मैं भी उपर्युक्त ग्रंथों के क्रम निर्देश को यथावत् स्वीकारता हूँ।

जल आदि द्रव्यों के क्रमिक चढ़ाने की उपयोगिता की दृष्टि पहले चार घातिया और पश्चात् चार अघातिया कर्मों के क्षय

की दृष्टि से क्रम, प्रदर्शित किया है। गोम्मटसार ग्रंथ की सोलहवीं गाथा में चार घातिया कर्मों का क्रम प्रदर्शन किया है। इस आधार से प्रथम चार छंदों को चार गुण और चार घातिया कर्मों के क्षय की दृष्टि से लिखा है। आयु का क्षय सब से अंत में होता है। इसलिए आयु कर्म के क्षय को फल के छंद में लिखा है। आयु क्षय होने पर ही परम यथाख्यात चारित्र/ मोक्ष फल प्रगट होता है। फल चढ़ाने के मंत्र में भी मोक्ष फल प्राप्ति का ध्येय स्पष्ट छलकता है।

मनुष्यों द्वारा की जाने वाली जिनेन्द्र देव की पूजन में जल, चन्दन आदि अष्ट द्रव्यों का प्रयोग कैसे हुआ इस विषय पर दृष्टिपात करने से ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य का/गृहस्थ का उपयोग विषयानुरंजन से कमजोर हो गया। वह निरालम्ब रहकर समता आदि छः आवश्यकों का पालन न कर सका। ऐसी विषम परिस्थिति में आचार्यों ने अकृत्रिम चैत्यालयों में इन्द्रादि द्वारा की जाने वाली विधि का अनुकरण किया। इन्द्रादिक जल चन्दन आदि द्रव्यों से पूजा करते हैं।

पूजा से आवश्यकों का अभ्यास - किसी भी कार्या का सुचारू रूप से संचालन करने के लिए पूर्वाभ्यास अत्यावश्यक है। श्रमण धर्म का सम्यक पालन करने के लिए पूर्वाभ्यास अत्यावश्यक है। श्रमण धर्म का सम्यक् पालन करने के लिए पूर्वाभ्यास के रूप में श्रावक धर्म का पालन किया जाता है। आगम में सर्वत्र कथन मिलता है कि श्रमणाचार का एक देश पालन श्रावकों को अपनी पदवी और सामर्थ्य का विचार कर

करना चाहिए। एकदेश पालन करने का अर्थ है सर्वदेश पालन करने का अभ्यास। श्रमणों के समता, स्तवन आदि षट आवश्यक कार्य हैं।[९५] श्रावकों को आवश्यक कार्यों को निर्दोष परिपालन करने के लिए देव पूजा, गुरु उपासना आदि छः कर्मों का प्रतिदिन करना चाहिए। वस्तुतः देव पूजा के द्वारा ही समता आदि का अभ्यास हो जाता है। देव पूजा के समय राग-द्वेष रहित परिणामों का होना समता है। गुणों की स्तुति/भक्ति स्तवन है। प्रणाम करना, हाथ जोड़ना आदि क्रियाएँ करना वंदना है। आत्म परिणामों/उपयोग का स्वभाव से च्युत हो परभावों में रमण रूप अतिक्रमण का वीतराग स्तुति के आलम्बन से पुनः स्वभाव में लौटना प्रतिक्रमण है। और भविष्य में पुनः अतिक्रमण न करना अर्थात् निर्वाण प्राप्ति का लक्ष्य प्रत्याख्यान है और पूजा के समय खड़े रहना, मन वचन काय को इधर-उधर न लगाना कायोत्सर्ग है। किन्तु भेद विवक्षावश समता स्तवन और वंदना का देव पूजा से प्रतिक्रमण का गुरु उपासना और स्वाध्याय से प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग का संयम, तप और दान रूप प्रवर्तन कर अभ्यास किया जाता है।

जिनेन्द्र पूजा सम्यग्दर्शन का निमित्त - जीवों के मिथ्यात्व दशा अनादि से वर्त रही है। अतः जीव को सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए। क्योंकि सम्यग्दर्शन विहीन ज्ञान चारित्र और तप सार्थक नहीं होता है। तीन काल और तीन लोकों में सम्यग्दर्शन के समान अन्य कोई कल्याणकारी नहीं है।[९६] मनुष्य गति में जाति स्मरण, धर्म श्रवण और जिन बिम्ब दर्शन को

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में बाह्य निमित्त कहा है। जिनेन्द्र पूजा के भावों द्वारा पूजक अपने को स्वभावोन्मुखी, कर रत्नत्रय की वृद्धि करता है। अर्थात् निश्चय रत्नत्रय रूप परिणित होने के लिए पंच परमेष्ठियों की आराधना सहकारी कारणभूत है।[९७] इसलिए जिन बिम्ब की भक्ति सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए की जाती है। जिनेन्द्र देव की बारम्बार भक्ति करने से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। जो संसार का निवारण कर मोक्ष का कारण होता है। वास्तव में जिनेन्द्र भक्ति और सम्यग्दर्शन में निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। जिन बिम्ब बिना वचन बोले ही सम्यग्दर्शन प्राप्ति के मूक उपदेशक है। भगवान के मुख चन्द्र को निरखते ही स्व पद स्वरूप को समझने की सुरुचि की जागृति, स्व पर की पहचान और ज्ञान सूर्य की कला/प्रकाश प्रगट हो जाता है। तथा काम रूपी रात्रि पलायन कर जाता है।[९८] जिनेन्द्र की परम शांत मुद्रा भव्य जनों को अपनी अनुभूति प्रगट करने में कारण है।[९९] तथा आपके गुणों का स्मरण स्व-पर का विवेक का हेतु और अनेक विघ्न विनाशक है।[१००]

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के कारण दो प्रकार के हैं - १ उपादान कारण और २ निमित्त कारण। जो स्वयं कार्यरूप परिणित होता है वह उपादान कारण और जो कार्य की सिद्धि में कारण होता है वह निमित्त कारण है। निमित्त कारण भी अन्तरंग और बाह्य की अपेक्षा दो प्रकार के होते हैं। उपादान कारण जीव की पात्रता है अर्थात् आसन्न भव्यता शुद्ध परिणाम आदि से युक्तता। अन्तरंग निमित्तकारण कर्म का उपशम, क्षय और क्षयोपशम है। बाह्य

निमित्त कारण/आलम्बन पंच परमेष्ठियों की पूजा/भक्ति है।

मन्दिर धर्म साधन का मूल कारण है। वहाँ सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव चार निमित्त भूत कारणों की पूर्ण योग्यता है। जिनेन्द्र बिम्ब द्रव्य हैं समवसरण/सिद्ध क्षेत्र आदि क्षेत्र हैं। अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन विशेष काल है। अधः प्रवृत्तिकरण आदि भाव हैं।[१०१] अथवा चैत्यालय मुनि आर्यिका, उत्कृष्ट श्रावक आदि द्रव्य, तीर्थ क्षेत्र आदि क्षेत्र कल्याणक काल आदि काल तथा रत्नत्रय आदि भाव हैं।[१०२] वहाँ जिन दर्शन, जिनवाणी श्रवण कर आत्म कल्याण किया जाता है। वर्तमान परिपेक्ष में धर्म साधन और परिणाम विशुद्धि जिनेन्द्र पूजन से जितनी होती है उतनी अन्य साधनों से नहीं।

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में निमित्तभूत पांच लब्धियों में एक देशना लब्धि भी है। जिनेन्द्र प्रतिमा वचन बिना ही अपनी वीतराग छवि द्वारा मोक्ष मार्ग का निरूपण करती है। उसे प्राप्त कर पूजक सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।

पूजक जिनेन्द्र पूजन द्वारा उनके वीतराग स्वरूप को मान कर जान कर उनके समान निज स्वरूप का ध्यान कर मोक्ष मार्ग में अग्रसर होता है। दर्शन-पूजन करने से पूजक का दृष्टि दोष चला जाता है। यथार्थ स्वरूप की स्वीकारता से सुप्त आत्म शक्तियाँ जागृत हो जाती हैं। इसी कारण आ. पूज्य पाद स्वामी ने जिन पूजा को सम्यक्त्व वर्द्धनी क्रिया कहा है।

जिनेन्द्र पूजन की अभिलाषा से जिन मन्दिर में प्रवेश करते ही पूजक का कालुष्य प्रक्षालित होने लगता है। अज्ञान तिमिर

विलय हो जाता है। ज्ञान प्रकाश में चित् स्वभाव आनंद विभोर हो जाता है। श्रद्धा के कपाट खुल जाते हैं सम्यग्दर्शन क्रीड़ा करने लगता है तथा निधत्ति और निकाचित कर्म प्रकृत्तियों का भी क्षय होता देखा जाता है।[१०३]

मोक्ष मार्ग का मूल सम्यग्दर्शन है। देव शास्त्र गुरु की पूजन आदि को सम्यक्त्व को बढ़ाने वाली /सम्यक्त्व क्रिया कहा है। चैत्य गुरु प्रवचन पूजादि लक्षण सम्यक्त्व वर्धिनी क्रिया सम्यक्त्व क्रिया[१०४] तथा धवलाकी टीका में जिन बिम्ब के दर्शन को सम्यादर्शन की उत्पत्ति का कारण बताया है।[१०५] जिन प्रतिमा प्रशमभाव की उत्पत्ति में हेतु है। और निर्मल परिणति स्वरूप होती है।[१०६]

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि जिनेन्द्र का दर्शन पूजन करना सम्यग्दर्शन प्राप्ति के लिए प्रबल निमित्त कारण है।

पूजा में तप - भगवान् जिनेन्द्र की पूजा करना स्वयं तप है। पूजन के प्रत्येक अष्टक में क्रमशः चार घातिया और अघातिया कर्मों के क्षय करने की पूजक द्वारा भावना व्यक्त की गई है। अथवा कर्म के उदय से होने वाले जन्म जरा आदि दोषों के क्षय की भावना प्रदर्शित की गई है। पूजन के अभिषेक आदि कार्यों में कायोत्सर्ग करते समय सकल कर्म क्षय करने की भावना झलकती है कर्मों के क्षय का हेतु तप है।[१०७] षट् कर्मों में स्वाध्यय को सर्वत्र परम तप कहा है।[१०८] पूजन पद्यात्मक स्वाध्याय है। जिनेन्द्र का पूजन करना उनकी विनय है और विनय अन्तरंग तप है। अतः जिनेन्द्र पूजन करना अन्तरंग तप है। तप से संवर और

निर्जरा भी होती है। इस दृष्टि से पूजा से निर्जरा कहना ठीक है, किन्तु इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि पूजन में जितने अंश गुणानुराग है उसने अंश में पुण्य कर्मों का बंध है और जितने अंश में वीतरागरूप परिणमन है उतने अंश में अबंध है निर्जरा है। इससे स्पष्ट है कि जिनेन्द्र पूजन करना भी तप है।

पूजन से स्वतंत्रता एवं स्वावलम्बन - जिनेन्द्र पूजन करने से पूजक के जीव्रन में स्वतंत्रता और स्ववलम्बन का विकास होता है। गुण ग्रहण और वीतराग निर्विकल्प समाधि के भावों से वस्तु परिणमन का ज्ञाता मात्र रहता है। आत्मा में होने वाले शुभ भावों का भी स्वामी नहीं बनता है। उन्हें पुण्य बंध का कारण जानता हुआ अपने को वीतराग स्वभाव में स्थापित करता है। पराश्रय की बुद्धि का सर्वथा अभाव हो जाने से पर का आलम्बन भी नहीं लेता है। वह जानता है कि सभी द्रव्य अपनी -अपनी मर्यादा में परिणमन करते हैं। कोई किसी को परिणमा नहीं सकता है। एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य से कोई भी सम्बन्ध नहीं है।[१०९]

पूजा आत्म सुधार का साधन - गृहस्थ जीवन में आध्यात्मिक विकास का आरम्भ जिनेन्द्र की पूजा करने से होता है। आत्मोन्नति की भावना से की जाने वाली पूजन आत्मा को स्वस्थ बनाकर वीतराग निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति में साधन बनती है। साधन से साध्य की सिद्धि होती है। अतः साधन का अपनाना उसके सार्थक है जो साध्य की सिद्धि कर सके।

पूजक जिनेन्द्र पूजन में मुक्त पुरुषों का गुणानुवाद करता है। वह जानता है कि मेरा स्वरूप जिनेन्द्र के समान है। भेद मात्र इतना है कि जिनेन्द्र पूर्ण वीतारगी हैं और मेरे जीवन में राग प्रवर्त रहा है।[११०] मैं भी जिनेन्द्र के मार्ग का अनुकरण कर जिनेन्द्र बन सकता हूँ। पूजन के माध्यम से पुष्पित हुआ वैराग्य मुक्ति फल को अवश्य देता है। अतः गृहस्थ जीवन में आत्म सुधार के लिए पूजन अद्वितीय कर्म है, आत्म सुधार का सरल एवं श्रेष्ठ साधन है।

पूजा से आत्मानुशासन - जिनेन्द्र पूजा करते समय पूजक को आत्मानुशासित रहना आवश्यक है। आत्मानुशासन विहीन पूजक जिनेन्द्र पूजा से आत्म लाभ नहीं ले पाता है। अनुशासन विहीन पूजक के परिणाम संक्लेषित होते हैं। उससे अनेक प्रकार की बाधाएँ उपस्थित होती है, पाप का बंध होता है। अतः भगवान जिनेन्द्र की पूजा आत्म हित करने के हेतु से करना चाहिए। तथा पूजन विधि की वीतराग पोषक परम्परा को अविकल रखना चाहिए। उस में विकलता करना ही अनुशासान हीनता है।

पूजा से विशेष पुण्य बंध - विशुद्ध भावों द्वारा जिनेन्द्र पूजन करने से पूजक को सातिशय पुण्य प्रकृतियों का बंध होता है। उससे चित्त भूमि विशुद्ध और उर्वरा बनती है। उसमें आत्मा रूपी बीज अंकुरित होकर परमात्मा बनता है। जिनेन्द्र पूजा से उपार्जित पुण्य का फल संसार वर्द्धक एवं इन्द्रिय विषय पोषक न होकर मोक्ष की साधना का हेतु होता है। उसके उदय में अनात्मा

आत्मा और परमात्मा के स्वरूप की प्रतीति होती है। तथा स्व पुरुषार्थ से निज निर्विकार विज्ञान घन चित् स्वभाव में एकाग्र होकर स्वयं परमात्मा बन सकता है। परमात्मा बनने वाले के सातिशय पुण्य का उदय अवश्य होता है किन्तु वह पुण्य परमात्मा नहीं बनाता है। परमात्मा बनने के लिए निज शुद्धात्मा का श्रद्धान, ज्ञान और चारित्र की एकता रूप स्वरूपाचरण ही कार्यकारी है।

पूजन से प्रयोजन की सिद्धि - जिनेन्द्र पूजन करने से पूजक के कषायों की मंदता एवं हानि होती है। पूजन में होने वाले विशुद्ध भावों के बल से घातिया कर्मों की क्षीणता होती है, वीतराग विज्ञान प्रगट होता है। अर्हंतों के स्वरूप का चिन्तन-मनन, अवलोकन, वचन श्रवण करना, निकटवर्ती होना उनके अनुसार प्रवर्तन करना आदि से रागादि भाव हीन हो जाते हैं और जीव-अजीव आदि तत्वार्थों को विशेष ज्ञान होता है। इसलिएं अर्हंतादि की पूजा करने से वीतराग विज्ञान/सम्यक्ज्ञान रूप विशेष·प्रयोजन की सिद्धि होती है।[१११]

जिनेन्द्र पूजा से पूजक के परिणाम स्वयमेव ही विशुद्ध होते हैं। उससे पूजक को साता आदि पुण्य प्रकृतियों का आस्रव, बंध होता है। तथा असाता आदि पाप प्रकृतियों का अपकर्षण/संक्रमण होता है। पूजक को उस से असाता रूप वेदना का अभाव और साता रूप अनुभव स्वयमेव होता है। पूजके साता भोगने और असाता मिटाने के लिए जिनेन्द्र पूजन नहीं करता है।

पूजक असाता के उदय समय में जिनेन्द्र पूजन/भक्ति आदि अनुष्ठान इसलिए करता है कि उपयोग भगवान जिनेन्द्र के गुण

स्मरण में रहे विपाक में न लगे। संकट की घड़ी में शान्तिनाथ भगवान की पूजा की उसकी भक्ति से प्रसन्न हों इन्द्र ने रावण से बोला - मांगो भगवान की भक्ति से तुम क्या चाहते हो। रावण ने उच्च गर्जना से कहा - तुम्हारे जैसे इन्द्र और मेरे जैसे अर्द्ध चक्री आदि सभी पद भगवान् जिनेन्द्र की भक्ति से मिलते हैं। बताओ अब मैं तुम से क्या मांगू। फिर भी इन्द्र ने रावण को बहुरूपणी विद्या दी।[११२]

जिनेन्द्र पूजा से तत्क्षण ही पूजक को इष्ट सिद्धि हो जावे तो भी कोई विश्मय की बात नहीं है। क्योंकि पूजा से होने वाला साता पुण्य प्रकृति का विशेष बंध का जघन्य अबाधा काल अन्त मुहुर्त है। इसलिए अनूतर्मुहूर्त के पश्चात् पुण्य रूप फल मिल सकता है। इसके प्रमाण प्रथमानुयोग में दृष्टव्य हैं। सीता, सोमा, सुदर्शन, श्रीपाल, धनंजय आदि को जिनेन्द्र पूजा का फल अन्तर्मुहूर्त बाद मिल गया। अग्नि से जल, नाग से हार शूली से सिंहासन, कुष्ट से कंचन काया, विष से निर्विष पुत्र ऐसे प्रयोजन की सिद्धि स्वयमेव होती है। किन्तु पूजक इस प्रकार के प्रयोजन का अर्थी नहीं होता है। पूजन तो भव के अभाव के लिए की जाती है। अतः पूजन से अलौकिक प्रयोजन के साथ लौकिक प्रयोजन की सिद्धि भी होती है।

पूजन में तत्व-- वीतराग भगवान् की पूजन पद्यात्मक स्वाध्याय है। पूजन के अष्टकों एवं जयमाला में पूजनकारों ने तत्वों का निरूपण किया है। जो सर्वत्र दृष्टव्य है द्यानतरायजी ने - देवशास्त्र, गुरु पूजा में विद्यमान बीस तीर्थकरों की पूजन में

सरस एवं मर्म स्पर्शी भाषा द्वारा तत्वार्थ बोध कराया है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, रत्नत्रय का स्वरूप, संसार के स्वरूप, संसार के स्वरूप का चित्रण किया है -

यह भव समुद्र अपार तारण के निमित्त सुविधि ठही।
अतिदृढ़ परम पावन यथारथ भक्ति वर नौका सही॥[११३]

यह संसार अपार महा सागर दुःख स्वामी
तातै तारै बड़ी भक्ति नौका जगमानी॥[११४]

इन शब्दों में संसार को अपार भव समुद्र, उससे पार होने के निमित्त पूजन विधि है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भव से पार होने को नौका है। ''बड़ी भक्ति'' का अर्थ रत्नत्रय है। इस प्रकार और भी सर्वत्र समझना चाहिए।

मैं जन्मरण का रोगी प्रभु यह रोग न अब तक मिट पाया।
प्रभु रोग निवारण तुम्हें जान, मैं औषधि लेने हूँ आया॥[११५]

तेरी अंतर लो. से निज अंतर दीप जलाने आया हूँ।
शुभ कर्मों का फल विषय भोग, भोगों में मानुष रमा रहा।
नित नई लालसाएँ जागी तन्मय हो उनमें समा रहा॥

रागादि विभाव किए जितने आकुलता उनका फल पाया।
होकर निराश जब जग भर से सिद्ध शरण में मैं आया॥[११६]

पूजन सम्बन्धी सावद्य अनिषिद्ध है - श्रावक जीवन में कुछ कर्म ऐसे भी हैं, जो सावद्य होते हुए भी निषिद्ध नहीं अपितु नित्य कृति कर्म हैं। भगवान् जिनेन्द्र का पूजन करना नित्य कृति

कर्म है। यद्यपि पूजन विधि सम्पादन करने में अल्प सावद्य हैं किन्तु पुण्य बंध बहुत होने से उसे सावद्य की क्रिया नहीं कही है। जिस प्रकार खेत में बीज बोना बीज नाश की क्रिया नहीं है, अपितु धान्य वृद्धि की क्रिया है। पूजन विधि को सावद्य की क्रिया समझ कर छोड़ना नहीं चाहिए। पूजा तो धर्म वृद्धि की ही फलदायिनी है। यदि पूजक निज शुद्धात्मा की अनुभूति स्वरूप वीतराग निर्विकल्प समाधि में लीन रहे और पूजन न करे यह उत्तम है। किन्तु वीतराग अवस्था को प्राप्त किए बिना ही पूजा आदि कर्मों को छोड़ता है तो वह उभय रूप से भ्रष्ट होता है।[११६-ब] श्रावक को पूजा आदि षट् कर्मों को करने का आगम में कही निषेध नहीं किया गया है। अपितु आस्तिक्य भाव से स्थापित करने योग्य कहा है।[११७] इससे स्पष्ट है कि अल्प सावद्य हो और पुण्य बंध बहुत हो ऐसी क्रियाओं को श्रावक की भूमिका में करना उचित है।

पूज्य पूजक सम्बन्ध - जैन संस्कृति में आत्मा से परमात्मा बनने अथवा पूजक से पूज्य/भक्त से भगवान बनने के लिए जिनेन्द्र परमात्मा के गुणों का आलम्बन लिया जाता है। जिस प्रकार पारस के स्पर्श से लोहा स्वर्ण रूप हो जाता है उसी प्रकार जिनेन्द्ररूपी पारस के गुणानुवाद करने से लोहा रूपी पूजक स्वर्ण रूप पूज्य बन जाता है। जिनेन्द्र के स्मरण/कीर्तन करने से पूजक की परिणति विकसित हो जाती है, क्रीड़ा करने लगती है। जिस प्रकार सूर्योदय से कमल खिल जाते हैं, मेघ गर्जना श्रवण कर मयूर आनंद विभोर होकर एकाकी नृत्य करने लगता है। दर्शन/

पूजन से पूजक ऐसा आनंदित होता है, जैसे चातक मेघ जल पाकर, वियोगी बंधु जन के मिलाप से, रोगी आरोग्य लाभ से, दृष्टिहीन दृष्टि पाने से दरिद्री चिन्तामणि पाने से आनंदित होता है।

पूजन का महत्व एवं फल - मनुष्य जीवन में जिनेन्द्र पूजन का महत्वपूर्ण स्थान है। पूजन करने के भावों से पूजक की हृदय तंत्री सर्वगं वैराग्य रूप झंक्रत हो जाती है। जिससे पूजक स्वयं को पूज्य से जोड़ लेता है। पूजक के जिन रूप परिणित भाव, और जिन गुण रूप परिणमन से परस्परोपग्रहो की भावना का विकास, कषायों का दमन, इन्द्रियों का निग्रह पापों का शमन हो जाता है।[११८] दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और उपचार विनय, भक्ति/पूजा रूपी भाव मोक्ष फल को देता है। भक्ति के अभाव में मुक्ति नहीं मिलती है।[११९] जिन पूजन के फल मे देवेन्द्र, नरेन्द्र आदि पदों को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करता है।[१२०] पूजन मोक्ष का द्वार है। इसके प्रतिदिन करने से मनुष्य में संयम, तप, ज्ञान, वैयावृत्ति, आत्मशुद्धि, उत्तम क्षमा आदि दशलक्षण धर्म, गुरु सेवा, सब जीवों के प्रति मैत्री भाव अकषाय परिणाम, आज्ञाकारिता, शिष्टाचार आदि अनेक गुण प्रगट होते हैं।[१२१] गृहस्थ जीवन की सफलता जिनेन्द्र पूजन करने से है।[१२२] देवशास्त्र गुरु की भक्ति से रहित पुरुष/गृहस्थ की सर्व क्रियाएँ ऊषर भूमि में पड़े बीज के समान है।[१२३]

जिनेन्द्र पूजन सर्व दुःख नाशक, काम विनाशक वांछित फलदायक है। अतः प्रतिदिन करना चाहिए। जिन भगवान के

द्वारा कही गई जिन मुद्रा है वही सिद्ध सुख है मुक्ति सुख है। यह कारण में कार्य का उपचार जानना। जिन मुद्रा मोक्ष का कारण है मोक्ष सुख उसका कार्य है। ऐसी जिन मुद्रा का साक्षात् की तो बात क्या स्वप्न में भी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। जिन मुद्रा की अवज्ञा का फल संसार रूप गहन वन में भ्रमण करता है वह मोक्ष सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है।[१२४]

जिस प्रकार सूर्य की किरणों से घना अंधकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार आपकी स्तुति करने से अनेक भवों के पाप कर्म क्षण मात्र में क्षय को प्राप्त हो जाते हैं। अधिक प्रलाप करने से क्या तीन लोक में जो कुछ सुख है, वह जिनेन्द्र पूजन का फल है। इसमें सन्देह नहीं।

चारों गतियों में जिनेन्द्र का दर्शन पूजन मिलना दुर्लभ है। सौभाग्यशाली पुण्यवानों को ही मिलता है।[१२५] पूजन श्रावक संस्कति का प्राण है और मन्दिर आध्यात्मिक प्रयोगशाला है।[१२६] यह संसार सागर से पार होने के लिए नौका समान है।[१२७] वीतराग की पूजन करने से वीतरागता की ओर लक्ष्य बनता है। स्व स्वरूप की प्रतीति होती है। वीतरागता प्रगट करने को कारण है। जिनेन्द्र के गुणानुवाद से विघ्नों/भयों का नाश होता है। दुष्ट देवता भी कुछ बिगाड़ नहीं कर सकता है। आत्मा में निर्भयतापूर्वक रत्नत्रय की प्राप्ति और वृद्धि होती है।[१२८] तथा पापों के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।[१२९] नित्य पूजन करने से विषयों की आसक्ति मन्द हो जाती है एवं वीतरागता का पोषण होता है, स्व-पर का भेद विज्ञान होता है। जिससे चतुर्गति संसार का परिभ्रमण बन्द हो जाता है।[१३०] जिन पूजन

तत्कालीन पुण्य बंध की अपेक्षा असंख्यात गुणी निर्जरा का कारण है।[१३१] जिनेन्द्र परमात्मा के नाम स्मरण मात्र से अनेक जन्मों के संचित कर्मों का नाश होता है। जो जीव भक्ति से जिनेन्द्र का पूजन/नमस्कार करते हैं वे श्रेष्ठ भाव रूपी शस्त्र के द्वारा संसार वेलि का मूल मिथ्यात्व आदि कर्मों का क्षय करता है।[१३२] वीतराग स्वरूप की आराधना से धर्म के साथ विपुल पुण्य का संचय होता है। जिससे जगत में इन्द्र चक्रवर्ती आदि बड़े पदों को पाकर रत्नत्रय धारण कर निर्वाण पद प्राप्त करता है।[१३३] पूजन से जीव लोक में दर्शनीय/पूज्यनीय/स्तवनीय हो जाते हैं और उन्हीं का जीवन सफल है।[१३४] जिनेन्द्र के चरण स्पर्श से हाथ गुणानुवाद से रसना, दर्शन से चक्षु धर्म श्रवण से कान पवित्र हो जाते हैं। मैं पूर्ण धन का धनी हो गया हूँ।[१३५] पूजन से सम्पूर्ण दोषों का नाश होकर स्वयं में परमात्मत्व प्रगट हो जाता है। जो जीव जिनेन्द्र के आकार के अनुरूप अर्थात् वीतरागता के अनुरूप जिन बिम्ब का निर्माण करता /कराता है उसे जगत् में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।[१३६]

दर्शन पूजन की महिमा ही अचिंत्य है। जिसके करने की भावना मात्र से स्वर्ग सिद्धियाँ हो जाती हैं। मेंढक ने दर्शन पूजन कर नहीं पाया था वह पूजन करने के ही पूर्व ही मरण को प्राप्त हो गया। और देव बनकर समवशरण में आ गया। राजगृही नगरी में जब म. महावीर स्वामी का समवशरण आया था तब एक (सामायिक में जल के परिणामों के साथ मरण कर मेंढक पर्याय को प्राप्त करने वाला सेठ) मेंढक समवशरण में जाकर

जिनेन्द्र भगवान का दर्शन पूजन करना चाहता था। वह भक्ति से विवश हो कर चल पड़ा। रास्ते में राजा श्रेणिक के हाथी के पैर तले दब जाने से प्राणांत हो गया। यद्यपि वह दर्शन पूजन न कर पाया था। किन्तु दर्शन-पूजन के भावों के कारण मरणोपरान्त वह देव पर्याय धारणकर तत्काल समवशरण में पहुँच गया।

जो जीव भक्ति से जिनेन्द्र भगवान का दर्शन पूजन नहीं करते हैं। उनका जीवन निष्फल है। उसके गृहस्थ आश्रम को धिक्कार है।[१३७] पंच परमेष्ठियों की पूजा न करने वालों को मोक्ष नहीं मिलता है।[१३८] जिन्होंने मुनियों को दान नहीं दिया जिनेन्द्र पूजन नहीं की पंच परमेष्ठियों की वंदना नहीं की उसे मुक्ति लाभ कैसे हो सकता है। अर्थात् नहीं हो सकता है।[१३८-ब]

फल - द्यानत फल जाने प्रभु, तुरत महासुख होय। (पंचमेरु पूजा)

पूजन ध्यान गान गुण करके, मरसागर जिय तर लेरे। धे.

पद जजत हरत भव फन्द, पावत मोक्षमही
भक्ति मुक्ति दातार चौबीसों जिन राज पद
तिन पद मन वच धार, जो पूजें सो शिव लहे। चौ.पू.

हे करुणा निधि भव दुःख मेटो, यातें मैं पूजों पद पाय
(आदिनाथ पूजा)

तिनकी भक्ति प्रसाद परम पद पाइये (देव शास्त्र गुरु पूजा)

दीजिये निवास मोक्ष भूलिए नहीं कदा (पार्श्वनाथ पूजा)

बसु कर्म अनादि संयोग, ताहि नशावत है (पंच बालयतिपूजा)

जन्म रोग निरवार सम्यक रत्नत्रय भजूँ (रत्नत्रय पूजा)

पूजों दिगम्बर गुरु चरण शिव हेत सब आशा हनी (महा अर्घ्य)

भव आताप निवार दशलक्षण पूजों सदा (द.ल. पू.)

जो पूजें ध्यावें मंगल गावें फेर न आवें भयवन में
पंचपरावर्तन तै निरवारो ऋषिराज (सप्तऋषि पूजा)

वखत रतन के तुम ही स्वामी दीजे शिवपुर राज कराय
(शान्तिनाथ)

जन्म जरा मृत क्षय करे हरे कुनय जड़ रीत
भवसागर से ले तिरे पूजे जिन वच प्रीत (सरस्वती पूजा)

दु:क्खखओ कम्कखओ ....शरणेण (शान्ति पाठ)

पूजन के नित करन से विषयासक्ति हो मंद ।
आपा पर का भेद हो नाशे चतुर्गति फंद ॥[११२]

पूजन के प्रतीक - जिनेन्द्र पूजन करने में अष्ट गुणों की प्राप्ति अथवा अष्ट कर्मों के क्षय के प्रतीक हेतु जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और सर्व का मिश्रण अर्घ्य लिया है । प्रत्येक द्रव्य में क्रमशः एक देश गुणों की व्याप्ति घटित होती है। इसलिए जल आदि अष्ट द्रव्यों का प्रयोग आगम में दृष्टव्य है। किन्तु इन अष्ट द्रव्यों से भिन्न किसी अन्य द्रव्य का प्रयोग आगम में देखने को नहीं मिलता है । गुणों की एकदेश व्याप्ति रहित द्रव्यों को पूजन के प्रतीक मान लिया जाने पर जगत के सभी द्रव्य पूजन करने को प्रतीक बन जावेगें । इससे पूजन

विधि में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी। जितने प्रकार के पूजन कराने वाले उतने ही प्रकार की पूजन विधि /सामग्री हो जावेगी। कहीं भी कोई एक नियम न रहेगा। मणिमय दीप का प्रतीक मणि की भाँति पवित्र शीतल काँति युक्त पदार्थ हो सकता है। घृत का प्रज्ज्वलित दीपक नहीं। जिस प्रकार अज्ञान तिमिर विनाशक आगमदीप हो सकता है, घृत का प्रज्ज्वलित दीप नहीं। इसलिए केसर से रंगी चिटक दीप का प्रतीक हो सकती है दीपक की लौ नहीं। दीपक की लों दाहक और धूम्र युक्त है। जबकि मणियों की प्रभा में धूम्र रहित शीतल है। जल से फल तक अष्ट द्रव्यों का मिश्रण अर्घ्य कहलाता है। अर्घ्य से भिन्न स्वतंत्र पदार्थ नहीं है। अर्घ्य निक्षेपण का मंत्रोच्चार कर पत्थर, प्लास्टिक, ताम्बा, लोहा, पीतल वस्त्र आदि से निर्मित पदार्थ क्षेपण करना कुन्दकुन्द की अन्वय आम्नाय में विकार पैदा करना है। सरस्वती पूजन में वस्त्र क्षेपण का प्रयोजन शास्त्र सुरक्षार्थ उनका का जीर्ण वस्त्र हटाकर नवीन वस्त्र से वेष्ठित करना है। वस्त्र परिवर्तन के मंत्र में "अर्घ्यं" नहीं है। वस्त्र अष्ट द्रव्यों में नहीं है।

द्रव्य निक्षेपण का स्थान - जिनेन्द्र पूजन में प्रयुक्त द्रव्य प्रासुक और जल से धुले हुए होते हैं तथा मंत्रोच्चार से उन्हें और भी पवित्रतम कर दिया जाता है। ऐसे पवित्रतम द्रव्य को पवित्र स्थान पर ही क्षेपण करना चाहिए।[१३१] पवित्र स्थान स्वस्तिक से अंकित शुद्ध थाली हो सकती है। अपवित्र वस्त्र पर अपवित्र पेन्ट/रंगोली चावल चूरी/ अन्य किन्हीं वस्तुओं से निर्मित/

मंडा हुआ मण्डल का स्थान द्रव्य चढ़ाने के योग्य पवित्र नहीं है कि उस पर पूजन के प्रतीक स्वरूप में कुछ भी क्षेपण/स्थापन किया जावे। स्व. पं. श्री फूलचन्दजी सा. सिद्धान्त शास्त्री, स्व. पं. श्री कैलाशचन्द्रजी, स्व. पं. श्री जगमोहनलालजी पूर्ववर्ती विद्वानों ने मण्डल पर द्रव्य सामग्री क्षेपण स्थापन करने का डटकर निषेध किया है तथा आ.पं. श्री नाथूलालजी संहितासूरि निषेध के ही दृढ़ पक्षधर हैं। अतः मण्डल पर शुद्ध मंत्रित द्रव्य सामग्री क्षेपण नहीं करनी चाहिए। तथा बादाम, श्रीफल, आदि कोई भी सामग्री मण्डल पर प्रतीक स्वरूप नहीं रखना चाहिए। पूजन में सामग्री में प्रयुक्त द्रव्य क्षेपण किया जाता है स्थापित नहीं। मण्डल के मध्य में जिनेन्द्र प्रतिमा विराजमान करने से जिनेन्द्र का अविनय बहुत होता है। पूजक मण्डल के अशुद्ध वस्त्रों से स्पर्शित हो जाता है। मण्डल बड़ा हो तो उस पर पैर रखना पड़ते हैं। इसलिए विनय प्रधानी दृष्टि को ध्यान में रखकर जिनेन्द्र को मण्डल से थोड़ी सी दूरी पर विराजमान करना चाहिए। तथा मण्डल के मध्य में ठोना नहीं रखना चाहिए।

सन् १९८४ में गोम्मटगिरि इन्दौर पर श्री पालीवालजी के परिवार (कोटा) द्वारा इन्द्रध्वज विधान कराया गया था। उस समय आ.पं. श्री नाथूलालजी संहिता सूरि के निर्देशन में मण्डल पर मन्दिर के प्रतीक ध्वजा सहित पूर्व से ही रख दिए गए थे। प्रत्येक अर्घ्य बोलकर ध्वजाएं नहीं लगाई/आरोहित की जाती है, अर्घ्य चढ़ाया जाता है। धन संग्रह के लोभ से प्रत्येक अर्घ्य के साथ ध्वजा लगाना अनुचित है। विद्वान वर्ग यह अच्छी तरह

से जानता है कि मन्दिर पर ध्वजा फहराने/आरोहण करने का मंत्र एवं विधि स्वतंत्र है। जयमाला के अर्घ्य क्षेपण के मंत्रोच्चार से मन्दिर पर ध्वजारोहण का संकल्प कितना हास्यास्पद है। मन्दिर पर भी जब नूतन ध्वजारोहण किया जाता है तो ध्वजारोहण का समय पूजा के समय से स्वतंत्र होता है।

आ.पं. टोडरमल जी ने केवली व केवली की प्रतिमा के आगे धर्मानुराग से उत्तम वस्तु रखने का समर्थन किया है। किन्तु मण्डल पर रखने का नहीं। उत्तम वस्तु का अर्थ जल चन्दन आदि अष्ट द्रव्य हैं।

जो ध्वजा एक बार मन्दिर पर आरोहित हो गई है वह ध्वजा पुनः पुनः आरोहित कैसे हो सकती है। पुनः पुनः आरोहण करना परिणामों की विचित्रिता है। इसलिए मण्डल पर द्रव्य सामग्री क्षेपण/स्थापन न कर पूर्व से स्थापित करना चाहिए। यदि पूर्व से स्थापन न किया गया तो वह मण्डल भी न रहा। अतः आम्नाय की अविकलता को ध्यान रखते हुए विवेक से काम लेना चाहिए।

मण्डल - रंग/चावल/मोती/पेन्ट से मंडा हुआ मण्डल मात्र मान चित्र है। मण्डल पर मंत्र नहीं लिखा जाता है और न ही श्री आदि वर्ण लिखे जाते हैं। मंत्र लिखे जाने पर वह मण्डल नहीं यंत्र का रूप बन जाता है। क्योंकि जिस पर मंत्र लिखा जाता है वह यंत्र कहलाता है। मण्डल द्वारा पूज्य क्षेत्र/मंदिर/प्रतिमा आदि का ज्ञान कराया जाता है। जिस प्रकार मान-चित्र

द्वारा भूगोलिक स्थिति का ज्ञान कराया जाता है उसी प्रकार मण्डल द्वारा पूजक को ज्ञान कराया जाता है कि हम किस स्थान पर किस जिनालय/जिन प्रतिमा की पूजा कर रहे हैं । अन्य कोई दूसरा प्रयोजन नहीं है ।

मण्डल - विधान - मण्डल का अर्थ है गोलाकार वृत्त, आदि मध्य और अन्त रहित, बिम्ब विशेष रूप से अर्हंत, सिद्ध के/समूह/समाज, दिव्य विभूतियों को आह्वान करने का तंत्र, परमात्म स्वरूप/और विधान का अर्थ है - अनुष्ठान, यज्ञ, सृष्टि, धार्मिक नियम, रीति, साधन/उपाय आदि अनेक अर्थ हैं जो अपने नाम की सार्थकता सिद्ध करते हैं ।

आदि मध्य और अंत रहित अखण्ड आत्मा के शुद्ध स्वभाव की उपलब्धि का अनुष्ठान करना ।

जिन बिम्ब के माध्यम से उनके आदर्श रूप गुणों की पूजा करना ।

अर्हंत, सिद्ध परमात्मा के समूह/समाज रूप होने के लिए अपने में सृष्टि करना ।

दिव्य अर्थात् शुद्धात्म स्वरूप ज्ञानादि अनंत विभूतियों को अपने में अह्वान/प्रगट करने रूप तंत्र का उपाय ।

परमात्म स्वरूप बनने/होने की रीति अर्थात् अपने में परमात्म स्वरूप की अभिव्यक्ति ।

रत्नत्रय एवं उत्तम क्षमादि धर्मों को शुद्धोपयोगरूप प्रगट

करने हेतु धार्मिक नियम।

शुद्धोपयोग प्राप्ति के निर्मित किए जाने वाले मण्डल विधान पूजन शुभ अनुठान हैं और धम प्रभावना के कारण भी है। इन साधनों/कारणों से जीव अपना उपयोग अधिकाधिक परमात्म स्वरूप में स्थिर कर आत्म स्वभाव की ओर प्रयाण करता है। ऐसे पुनीत साधनों को धनार्जन का साधन बनाना सर्वथा अनुचित है। जयमाला के प्रत्येक अर्घ्य समर्पण करने का मूल्य निर्धारण करना/अर्घ्य के स्थान पर अन्य द्रव्य स्थापन कर धनार्जन करना/ अविवेक का अतिरेक है। पूजक स्वयं विचार करे कि मंत्र में 'अर्घ्यं स्वाहा' है फिर ध्वजा आदि पदार्थ कैसे चढ़ाए जा सकते हैं। मण्डल विधान शुद्धोपयोकी वृद्धि/धर्म प्रभावना की दृष्टि से करना चाहिए।

विधान - (वि+धा+ल्युट्) क्रमशः रखना, अनुष्ठान, नियोजन, उपदेश, धार्मिक नियम, निर्माण, साधन आदि अनेक अर्थ हैं जो अपने नाम की सार्थकता सिद्ध करते हैं।

यहाँ विधान का अर्थ है धार्मिक तपश्चर्या का कार्य क्रमशः करना जब विधान का प्रयोग पूजन के साथ किया जाता है, तब उसका अर्थ है पूजन सम्बन्धी अनुष्ठान करना है। अर्थात् जिनेन्द्र देव की पूजन पूर्वक मोक्ष मार्ग की साधना का जीवन में निर्माण करना है। पूजक पूजन-विधान के माध्यम से अपने को संयम के मार्ग में स्थापित करता है। इसलिए विधान के समय-पूजकों एवं जाप्य कर्त्ताओं को मंत्र संस्कार पूर्वक संयत बनाया जाता है।

दिगम्बर जैन धर्म के सभी विधानों में सिद्धचक्र मण्डल विधान का सर्वाधिक महत्व प्रचलन है। सिद्ध चक्र मण्डल विधान में सिद्धों के गुणों का स्मरण द्विगुणित क्रम में किया गया है। इससे स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि पूजक बाह्य और आभ्यन्तर बल को बढ़ाता हुआ निजात्मा को शुद्धात्मा /सिद्धात्मा बनाने का आरम्भ कर रहा है। यही पूजन - विधान करने का प्रयोजन भी है। सिद्ध चक्र विधान की प्रथम जयमाला में सिद्ध दशा प्रकट करने का अनुपम क्रम दर्शाया है। सभी जयमालाओं में वीतराग विज्ञान प्राप्ति का यशोगान किया गया है। पूजा के अष्टकों एवं अर्घ्यों के पदों का अर्थ गांभीर्य है।

नवग्रह विधान में नव देवों की पूजन है। नवग्रह कोई ग्रह, नक्षत्र नहीं अपितु अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु जिन धर्म जिनवचन जिन प्रतिमा है। ये नव देव मुझे रत्नत्रय की पूर्णता देवें।

अरहंत सिद्ध साहू तिदियं जिण धम्म वयण पडिमाहू।
जिणणिलया इदिराए णवदेवा दिंतु मे बोहि ॥

एक अर्हंत के बिम्ब में नव देवों का गर्भितपना है।[१४०] नंदीश्वर मण्डल विधान जिन सहस्रनाम विधान, चौंसठ ऋद्धि विधान शान्ति विधान, समयसार विधान प्रवचनसार विधान, अष्टपाहुड विधान, रत्नकरण्ड श्रावकाचार विधान ये सभी विधानों में जिनेन्द्र के गुणानुवाद पूर्वक आत्मा से परमात्मा बनने का उपाय दर्शाया गया है।

. - (निर्+मल्+ण्यत्) निर्माल्य का शाब्दिक अर्थ ुसार पृथक्-पृथक् है। जैन संस्कृति में देव के सम्मुख ...ात वस्तु है। और वैदिक संस्कृति में देव को अर्पित वस्तु है। अर्थात् जैन संस्कृति में मंत्रोच्चार/अभिप्रायपूर्वक देव-शास्त्र-गुरु के सम्मुख निक्षेपित/चढ़ाई गई वस्तु है। मंत्रोच्चार पूर्वक निक्षेपित द्रव्य पवित्र होता है और निक्षेपणीय द्रव्य पवित्र होने योग्य होता है। देव के सम्मुख मंत्र/छंद का उच्चारण अथवा क्षेपण करने का अभिप्राय पारसमणि है। और क्षेपणीय द्रव्य लोहा है। जिस प्रकार पारस से स्पर्शित होने पर लोहा स्वर्ण रूप हो जाता है। उसी प्रकार मंत्रादि द्वारा हाथ में लिया हुआ द्रव्य पवित्र हो जाता है। पवित्र /निर्माल्य द्रव्य अछूत नहीं होता है। पूजन में निर्माल्य द्रव्य से हाथ स्पर्शित होने पर पूजक अपना हाथ धो लेता है उसका प्रयोजन यह है कि निर्माल्य द्रव्य से स्पर्शित हाथों से क्षेपणीय द्रव्य को स्पर्शित करने से वह सम्पूर्ण ही पवित्र निर्माल्य हो जावेगा निक्षेपण के लिए द्रव्य सामग्री ही न रहेगी इस अभिप्राय से पूजक निर्माल्य द्रव्य से स्पर्शित हाथों को धो लेता है। निर्माल्य द्रव्य पवित्र अवश्य है किन्तु पूज्य नहीं है। इसलिए ठोंना में क्षेपण किए गए पुष्प पूज्य नहीं है उन्हें मस्तक से लगाना, हाथ जोड़ना, घर ले जाना अथवा उपेक्षा दृष्टि से देखना अविवेक है।

पूजक निर्माल्य द्रव्य सामग्री को अपने घर ले जाकर यादगार के रूप में नहीं रखता है। तथा अन्य कार्यों में पुनः प्रयोग नहीं करता है। जो निर्माल्य द्रव्य का उपयोग करता है उसके अशुभ

नाम कर्म और अन्तराय कर्म का बंध होता है।[१४१] आ. श्री कुन्दकु देव कहते हैं कि श्री जिन मन्दिर जीणोद्धार, जिन बिम्ब प्रतिष्ठा, मन्दिर प्रतिष्ठा, जिनेन्द्र पूजन, जिनेन्द्र की रथ यात्रा, जिनायतन की सुरक्षार्थ दिया गया दान का द्रव्य उसे जो मनुष्य ग्रहण करता है वह नरक के दुःखों को भोगता है।[१४२] इससे स्पष्ट है कि दान एवं निर्माल्य द्रव्य का उपयोग मनुष्य को नहीं करना चाहिए।

जिनेन्द्र प्रतिमा का शुद्ध प्रासुक (गरम किया) जल से अभिषेक/प्रक्षाल करना जल से पूजा नहीं है। अभिषेक करते समय प्रतिमा पर जल का निक्षेपण नहीं किया जाता है। अभिषेक करने का प्रयोजन मात्र मूर्ति शुद्धि है। इसलिए प्रतिमा से स्पर्शित जल/गंधोदक निर्माल्य नहीं है। यदि अभिषेक करना जल से पूजा करना माना जावे तो उस मान्यता अनुसार गंधोदक निर्माल्य कहा जा सकता है। जैसा कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भगवान की प्रतिमा का अभिषेक करना जल से पूजा, प्रतिमा पर चन्दन लगाना चन्दन से पूजा, उनके पैरों पर फल चढ़ाना पूजा माना गया है।

निर्वपामीति - निर्वपामीति का अर्थ (निः+वप+अम+इति) क्षेपण है। निः=नहीं, संग्रह आश्रय पुष्टि, रहित। वप=बोना। अम=उत्मपुरुष क्रिया का प्रत्यय है। इति=इस प्रकार, प्रारम्भ सूचक, अंत सूचक, निकटता, वाक्यार्थ द्योतक है। इसके भाव वाचक अर्थ - आपके निकटवर्ती होना संसार पीड़ा विनाशक, स्वाश्रय पोषक, दोष विनाशक, निर्वाण के बीज बोने

का प्रारम्भ शुद्धात्म साधक, संसार का अन्त, निर्वाण गमन है।

स्वाहा - यह अव्य है जो देव के सम्मुख द्रव्य सामग्री क्षेपण करते समय उच्चारण किया जाता है। इसके अर्थ हैं ज्ञान परिणति, चैतन्य शक्ति आदि। ध्वनि उच्चारण से अर्थ में परिवर्तन हो जाता है।जैसे - लोल तरंग ध्वनि से उच्चारण करने पर शान्ति सूचक अर्थ ध्वनित होता है और द्रुत गति से उच्चारण करने पर विनाश सूचक अर्थ ध्वनित होता है।

पूजन में अन्यथा प्रवृत्ति - जिनेन्द्र पूजन करने में मन की चपलता, संगीत की अभिरुचि, जन-मन-कल रंजन एवं धन संग्रह का लोभ आदि अन्यथा प्रवृत्तियाँ हैं जो वीतराग देव की पूजन में स्वेच्छाचार के विष कंटक बोते हैं। जिन्हें दूर करना असम्भव तो नहीं परन्तु दुर्निवार अवश्य प्रतीत होते हैं।

पूजक का मन पहले से ही चपल है। स्वरूप स्थिर रहता नहीं है। यदि पूजन करने में इन्द्रिय विषयों का पोषण करके राग भाव का पोषण किया गया और मन को भटकने के साधन मिले तो उसे लाभ क्या मिला। इन्द्रिय विषयों एवं रागादि भावों से जीव दुःखी था और पूजन करने में इनका ही पोषण हुआ, आत्म हित कहाँ हुआ। उसके आत्म स्वभाव का घात ही हुआ। पूजन करने में इन्द्रिय विषयों की लालसा तीव्र कषाय होने से पाप बंध ही होता है। सरागी देवों के पूजन की भाँति वीतराग देव की पूजन करने से पुण्य का नहीं अपितु पाप का ही बंध होता है।

संगीत की रुचि होने से पूजक जिनेन्द्र का गुणानुवाद /पूजा फिल्मी धुनों/तर्जों के आधार पर गुनगुनाता/गाता/करता है।

उससे उसका उपयोग जिनेन्द्र के स्वरूप में न लग कर फिल्मी धुनों में ही भटकता रहता है। उसके चित्त में वीतराग देव के स्थान पर फिल्मी कलाकार चित्रित होते हैं। मन पूजन से हटकर विषयों में रमने लग जाता है। जिस प्रकार टी.वी. द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों में बच्चों का मन ज्यों-ज्यों रमने लगता है त्यों-त्यों उनका मन अध्ययन में नहीं लगता है। अर्थात् मन अध्ययन से हटता जाता है। उसी प्रकार पूजक का मन ज्यों-ज्यों फिल्मी धुनों में लगता जाता है त्यों-त्यों पूजन में से हटता जाता है।

पूजन विधि के संचालकों में भी कतिपय ऐसे संचालक हैं जो जगत् को रंजायमान और अर्थोपार्जन को दृष्टि में रखते हुए पूजन विधान का सम्पादन करते हैं। आर्ष परम्परा का उल्लंघन करते/देखते हुए उन्हें भय नहीं लगता है। यहाँ तक उनमें अहं की भावना प्रबल हो जाती है। आज पूजन-विधान के समय गाई जाने वाली स्वर लहरियों से जिनालय, संगीतालय जैसा प्रतिभासित होता है। भगवान जिनेन्द्र की पूजा उन स्वरों में गाना चाहिए जिससे पूजक संवेग एवं वैराग्य रस से रस विभोर हो जावे। पूजा में संगीत एवं वाद्य यन्त्रों की ध्वनि में पूजा के प्रयोजन का ही लोप हो जावे तो संगीत एवं वाद्य यन्त्रों का प्रयोग सही नहीं किया गया है।

वीतराग देव की पूजन विधि में वीतराग भावों का लोप करने से आर्ष परम्परा का प्रयोजन ही लोप होने लगता है। उदाहरण के तौर पर किसी चित्रकार ने तीर्थंकर महावीर स्वामी के दिगम्बरत्व को वृक्ष की शाखा द्वारा आवरित किया। उसके

अनुकरण का फल यह है कि वर्तमान में हमारे परम पूज्य प्रातः स्मरणीय पंच परमेष्ठियों के अर्द्ध चित्र बनने/छपने लगे हैं। उन चित्रों में दिगम्बरत्व समूल रूप से गायब हो गया है। उन अर्द्ध चित्रों को देख कर कोई भी व्यक्ति उन्हें दिगम्बर का चित्र नहीं कह सकता है। दिगम्बर परम्परा में शरीर के किसी भी अवयव को पूज्य स्वीकार नहीं किया है। पूजन जीवन्त की होती है। आगम में मुनिराजों के चरण चिन्ह, तपो भूमि को पूज्य कहने का उपचार है। किन्तु शरीर के अवयवों को नहीं। वीतरागियों के सम्पूर्ण आगोपांग युक्त चित्र ही आदर्श के योग्य होते हैं।

दिगम्बर जैन परम्परा में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा द्वारा प्रतिमा में मंत्र संस्कार द्वारा प्रतिष्ठा की जाती है। उस प्रतिमा को जीवंत स्वीकार किया जाता है। खण्डित प्रतिमाएँ संग्रहालय में सुरक्षित रखने योग्य हैं, किन्तु जिनालय में नहीं। खण्डित प्रतिमाओं के सर्वांग जोड़ने पर पूज्य नहीं होती है। उनकी पुनः प्रतिष्ठा भी नहीं की जाती है। प्रतिष्ठित मूर्ति पर टांकी/छेनी का प्रयोग नहीं किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि पंच परमेष्ठियों के अखण्ड चित्र ही आदर्श के योग्य होते हैं। जो कि पूर्ण दिगम्बरत्व का प्रदर्शन करते हैं।

शान्ति पाठ - शान्ति पाठ ''शम्'' धातू से (शम+क्तिन) से निष्पन्न है। जिसके अनेक अर्थों में मांगलिक प्रशम, निराकरण, वैर निरोध, अमनचैन स्थिरता, उदासीनता, प्रायश्चित अनुष्ठान, मोह क्षोभ का अभाव, विश्राम आदि अर्थ शान्ति पाठ में दृष्टव्य है।

मांगलिक - शान्ति जिनं .... षोडषतीर्थंकर प्रणमामि - १/२
प्रशम-दिव्यतरुः .... परमां च। ३/४
वैर निरोध - ये अभ्यर्चिता .... जिनेन्द्रः। ५/६
अमन-चैन - क्षेमं सर्व... सर्वसौख्य प्रदायि। ७
स्थिरता - प्रध्वस्तघातिकर्माणः... जिनेश्वराः। ८
उदासीनता - प्रथमं करणं ... यावदेतेऽपवर्गः। ९
पायश्चित अनुष्ठान - तव पादौ ... संप्राप्तिः। १०
मोह-क्षोभ रहित परिणाम - अक्खर ... दिंतु। ११
विश्राम - दुक्खखओ ... चरण सरणेण। १२

हिन्दी संस्कृत शान्ति पाठ में "शान्ति" पद की नो बार पुनरावृत्ति हुई है। जिसमें तीन बार शान्तिनाथ जिनेश्वर के लिए और छः बार शान्ति की प्राप्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है। शान्ति हेतु की भावना प्रधान होने से इस पाठ का नाम शान्ति पाठ है।

शान्ति पाठ में दो भक्ति पाठ सम्मिलित हैं। शान्ति भक्ति - शान्ति जिनं शशि ... ऋषभाद्या जिनेश्वरः और दूसरी समाधि भक्ति प्रथमं करणं .... जिनवर चरण सरणेण तक। इन दो पाठों में जगत् कल्याण की भावना एवं अपने जीवन का अन्तिम उद्देश्य समाहित है।

विसर्जन/समापन/क्षमापन पाठ - (वि+सृज्+ल्युट्) विसर्जन "सृज्" धातु से निष्पन्न है। सृज् धातु में "वि" उपसर्ग जुड़कर विसर्जन बना है। (वि+सर्जन) वि का अर्थ है पृथकता, विशिष्टता जाँच आदि। सर्जन का अर्थ है रचना करना, त्याग,

मुक्ति। विसर्जन का अर्थ - उदगार समता विदा करना।

सर्जन का अर्थ रचना करना अर्थात् पूजन विधि सम्पादन करना। उसमें वि उपसर्ग जुड़ने से उसका अर्थ हुआ अष्ट द्रव्य से की जाने वाली पूजन विधि की पूर्णता /त्याग करना है। अतः विसर्जन का अर्थ पूजन करने का त्याग/समापन नहीं है। उस समय सम्पादित पूजन विधि की पूर्णता/त्याग है। अथवा पूजक पूजनोपरान्त जिन समान निज स्वभाव में स्थिर होने के लिए पूजन रूप शुभ भावों का त्याग करता है।

पूजक जिनेन्द्र पूजन में अष्ट कर्म क्षय कर मुक्त होने की भावना व्यक्त करता है। इसलिए पूजन विधि की पूर्णता होने पर वह अपने उपयोग को कर्म क्षय करने में समर्थ बनाना चाहता है। अथवा पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा अनुसार त्रिकाल वंदना पूर्वक शुद्ध स्वभाव की प्रतीति द्वारा भव से पार होना चाहता है। अतः स्पष्ट है कि विसर्जन का अर्थ संसार से मुक्ति की ओर प्रयाण करना है।

पूजक जिनेन्द्र पूजन विधि के समापन पर अपने उद्गार व्यक्त करता है कि - ज्ञाताज्ञात वश पूजन विधि में जो भी त्रुटि हुई हो वह पूजन के प्रसाद से पूर्ण हो। मैं मंत्र, धन, क्रिया आदि से हीन हूँ। तथा पूजन विधि में लगे दोषों के प्रति क्षमा प्रार्थी हूँ। हे प्रभु - मुझे चरणों/आपके रत्नत्रयक मार्ग की सेवा का अवसर प्राप्त हो। अतः विसर्जन पाठ में पूजक क्षमा प्रार्थी बना है, इसलिए इस पाठका नाम क्षमायाचना पाठ भी है।

विसर्जन का अर्थ देवों को विदा करना भी होता है। जो कि पंच कल्याणक प्रतिष्ठा में पूर्ववर्ती कतिपय प्रतिष्ठाचार्य देवों को बुलाने का संकल्प करते थे। उन संकल्प की पूर्णता पर विदा/ विसर्जन करते थे। किन्तु प्रतिष्ठा पाठ में आ. जयसेन ने देवों को बुलाया नहीं अपितु मनुष्यों का उपमित/संकल्पित किया है। अतः वहाँ भी विसर्जन का औचित्य नहीं है। देव पूजन आदि नित्य कृति कर्म में जिनेन्द्र आदि की विदाई नहीं होती है। क्योंकि वीतराग देव आते ही नहीं है, तो फिर वीतराग देव प्रभु को बुलाना बैठाना और विदा करने की कल्पना का कोई औचित्य ही नहीं है। सोलह कारण भावना, दश लक्षण धर्म रत्नत्रय धर्म की पूजा करते समय इन्हें कहाँ से बुलाया जाए और कहाँ विदा किया जावे ? इन्हें बुलाने और विदा करने की कल्पना हास्यास्पद ही सिद्ध होती है।

कायोत्सर्ग - (काय+उत्सर्ग) यहाँ उत्सर्ग भावसाधन प्रदान क्रिया है। अतः काय आदि पर द्रव्य में स्थिर भाव छोड़कर जो आत्मा को निर्विकल्प रूप से ध्याता है उसे कायोत्सर्ग होता है।[१४३] परिमित समय के लिए शरीर से ममत्व का त्याग निरास करना कायोत्सर्ग है।[१४४] कायोत्सर्ग का धारक देह को अचेतन, नश्वर व कर्म निमित्तक समझ कर उसके पोषण आदि के अर्थ कोई भी कार्य नहीं करता है।[१४५] तथा जल-मल से लिप्त, रोगादि से ग्रसित होने पर चिकित्सा नहीं करता है। मुख धोना आदि शरीर संस्कार से उदासीन, भोजन आदि से निरपेक्ष, माध्यस्थ भाव संयुक्त देह से निर्ममत्व होता है।[१४६] अर्थात् काय सम्बन्धी

क्रियाओं की निवृत्ति का नाम कायोत्सर्ग है।[१४७] तथ कायोत्सर्ग में दोनों बाहु लम्बी एवं चार अंगुल के अन्तर से समपाद हलन-चलन रहित रखा जाता है।[१४८]

कायोत्सर्ग से - उपसर्ग जय होता है। धर्मय ध्यान और शुक्ल ध्यान की सिद्धि होती है। कायोत्सर्ग करने वाले के चिर संचित कर्मों का क्षय होता है।[१४९] कायोत्सर्ग कर्म क्षयार्थ किया जाता है।

ईर्यापथ के अतिचारों का शोधन होता है। कर्म रूपी धूल अलग हो जाती है। दुःखों का अन्त हो जाता है। अहंकार और ममकाररूप संकल्पों का त्याग। बाह्याम्यन्तर उपाधि का त्याग, मोक्ष का साधन, पवित्रता प्रगट करने का कारण है। रत्नत्रय शुद्धि का हेतु/ध्यान वृद्धि का रसायन है।

ओम् (ॐ) - अविनाशी ब्रह्म का प्रतीक है। इसमें पंच परमेष्ठी समाहित है। प्रत्येक मंत्र के प्रारम्भ में उच्चारण किया जाता है। इससे समस्त बीज मंत्र सार्थक बनते हैं। तीर्थंकर परमात्मा की दिव्य ध्वनि ओम् रूप से खिरती है। ज्ञानार्णव में शुभचन्द्र आचार्य ने मुक्ति का दाता कहा है। इसका उच्चारण प्लुत त्रिमात्रिक किया जाता है। ओ का उच्चारण दीर्घ समय तक करने से मात्राएँ बढ़ जाती हैं। न्युनाधिक मात्राएँ होने पर वह शुद्ध नहीं रहता है।

ह्रीं - बीजाक्षार है जो सिद्ध/सिद्धि/शुद्धता का वाचक है। यह आत्म बीज है। प्रत्येक मंत्रोच्चार के आरम्भ में ओम् के बाद उच्चरित होने वाला बीजाक्षर है। जो मंत्र की सार्थकता सिद्ध करता है। इसे सिद्ध चक्र का वाचक भी माना गया है। यह तीस चौबीसी का प्रतीक बीजाक्षर है।

वषट् 'वह' धातु से डषटि प्रत्ययपूर्वक निर्मित अव्यय है इसका अर्थ शिखाबीज के रूप में तथा अह्वानन के लिए उच्चरित होता है।

श्री - (स्त्री (श्री+क्विप, नि) ज्ञान, समृद्धि, केवलज्ञान साम्राज्य, महिमा, शुद्ध गुण, धर्म, कमल आदि अनेक अर्थ हैं। 'श्री' सम्मान सूचक पद है जो पूज्य देवों के नाम के पूर्व लगाया जाता है।

संवौषट् - विजय का साधन है।

शंका समाधान

प्रश्न- क्या अभिषेक, पूजा का अंग है ?

उत्तर- नहीं है।

प्रश्न- तत्काल छने हुए जल से अभिषेक क्यों नहीं किया जाता है ?

उत्तर- तत्काल छना हुआ जल अचित्त/प्रासुक नहीं है। कच्चा जल सचित्त है। सचित्र प्रतिमाधारी श्रावक सचित्त/कच्चा जल उपयोग नहीं करता है। यहाँ तक कि कच्चे जल से धुले वस्त्र भी उपयोग में नहीं लेता है। जब सचित्त त्याग प्रतिमाधारी श्रावक ही सचित्त जल का उपयोग नहीं करता है तब उस सचित्त जल का उपयोग अभिषेक/प्रक्षाल करने में प्रयुक्त कैसे हो सकता है। अतः सचित्त जल से अभिषेक नहीं करना चाहिए।

प्रश्न- क्या लवंग आदि डालकर प्रासुक किए जल से अभिषेक किया जा सकता है ?

उत्तर- नहीं। लवंग मिश्रित जल से/द्वारा प्रासुक किए जल से अभिषेक करने से जिनेन्द्र को वस्त्र पहनाने का दोष लगता है। त.रा.वा. और सर्वार्थ सिद्धि में कुप्यप्रमाण में लवंग आदि का उल्लेख है।

प्रश्न- दिन में अभिषेक कितने बार किया जाना चाहिए ?

उत्तर- प्रतिदिन एक बार ही अभिषेक किया जाना चाहिए। पुनः पुनः अभिषेक एवं थाली में प्रतिमा अधिक समय तक विराजमान रखना अनुचित है।

प्रश्न- अभिषेक करने का प्रयोजन क्या है ?

उत्तर- भगवान के निकटवर्ती होने का अवसर है एवं भगवान की तरह अपने कर्म मल धोने की भावना है तथा मूर्ति शुद्धि भी हो जाती है।

प्रश्न- पंच परमेष्ठी अस्नान स्वभावी हैं फिर अर्हंतों का अभिषेक क्यों करना चाहिए ?

उत्तर- यह पंच परमेष्ठियों का अभिषेक नहीं है। यह अर्हंत की मूर्ति का अभिषेक है।

प्रश्न- क्या यह जन्म कल्याणक का प्रतीक है ?

उत्तर- नहीं। यह जन्म कल्याण का प्रतीक नहीं है। जन्म कल्याण के अभिषेक का जल विलय हो जाता है। वह ललाट पर लगाया नहीं जाता है। जन्माभिषेक के उपरान्त जिनेन्द्र को इन्द्र वस्त्राभूषण पहनाता है। जन्म का रूपक अर्हंतादिक के बिम्ब में करना भी अनुचित है। यदि जन्माभिषेक माना जाएगा तो प्रतिमा को वस्त्राभूषणका भी प्रसंग आवेगा जैसा कि जन्म मंगल पाठ में लिखा है- 'पुनि श्रृंगार प्रमुख आचार सवै करे।'

प्रश्न- अभिषेक करते समय जन्म मंगल पाठ क्यों नहीं पढ़ना चाहिए ?

उत्तर- अभिषेक के समय आ. माघ नंदी का संस्कृत अभिषेक पाठ अथवा इसकी का भावानुवाद हरजसरायकृत हिन्दी अभिषेक पाठ पढ़ना चाहिए। जन्म कल्याणक के समय जन्म मंगल पाठ पढ़ना उचित है। अर्हंत प्रतिमा के अभिषेक करते समय नहीं पढ़ना चाहिए।

प्रश्न- स्त्रियाँ अभिषेक क्यों नहीं करती है ?

उत्तर- स्त्रियों का शरीर स्वभावतः अशुचि रहता है। ब्रह्मचर्य में दोष उपस्थित होता है। इत्यादि अनेक कारण है।

प्रश्न- अभिषेक झारी से कर सकते हैं क्या ?

उत्तर- नहीं। झारी की टोंटी का कभी मार्जन नहीं होता है। इसलिए नहीं करना चाहिए।

प्रश्न- शान्तिधारा यंत्र/प्रतिमा किस पर करना चाहिए।

उत्तर- शान्तिधारा यंत्र के सम्मुख करना चाहिए। जिन प्रतिमा पर नहीं।

प्रश्न- शान्तिधारा का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर- शान्तिधारा में कल्याण की कामना का प्रयोजन निहित है।

प्रश्न- क्या मैना सती ने श्रीपाल को गंधोदक सर्वांग में लगाया था ?

उत्तर- नहीं। मैना ने श्रीपाल को गंधोदक सर्वांग में नहीं लगाने का वर्णन श्रीपाल चरित्र में कहीं नहीं है। श्रीपाल चरित्र में सिद्ध चक्र पूजन का निरूपण है।

प्रश्न- अवशेष गंधोदक का क्या करना चाहिए ?

उत्तर- अवशेष गंधोदक को मन्दिर के शिखर आदि उच्च स्थान पर फैलावें जो अन्तर्मुहूर्त में सूख जावे।

प्रश्न- स्वस्ति का क्या अर्थ है ?

उत्तर- स्वस्ति का अर्थ कल्याण है।

प्रश्न- प्राचीन प्रतिमाओं का जीर्णोद्धार कर उन्हें पुनः पूज्य बनाया जा सकता है ?

उत्तर- नहीं। प्रतिष्ठित प्रतिमा पर टांकी का प्रयोग नहीं होता है एवं पुनः प्रतिष्ठा का विधान नहीं है।

प्रश्न- क्या स्नान किए बिना पूजा की जा सकती है ?

उत्तर- नहीं। स्नान द्वार पवित्र होकर पवित्र परमात्मा की पूजा की जाती है।

प्रश्न- क्या बैठ कर पूजन करना उचित है ?

उत्तर- नहीं। बैठकर पूजा करना अनुचित है। क्योंकि इन्द्रादिकों द्वारा की गई पूजा विधि का अनुकरण गृहस्थों ने किया है। इन्द्रगण बैठ कर पूजा नहीं करते है।

प्रश्न- मूर्ति की पूजा क्यों की जाती है ?

उत्तर- जैनागम में मूर्ति पूजा नहीं अपितु मूर्तिमान की पूजा है। जिस प्रकार साक्षात् अर्हंत आदि भव्य जीवों को शुभोपयोग पूर्वक रत्नत्रय की साधना करने में कारण हैं। उसी प्रकार उनके समान ही उनका बिम्ब भी कारण है।

प्रश्न- अभिषेक के लिए कितना जल लेना चाहिए ?

उत्तर- जितने कम से कम जल से प्रयोजन सिद्ध हो जावे।

प्रश्न- गंधोदक किस प्रकार और कहाँ लगाना चाहिए ?

उत्तर- अनामिका और मध्यमा अंगुलियों को जल से धोकर गंधोदक में इतना स्पर्श करें कि नाखून गंधोदक को स्पर्श न करें फिर अपने उत्तमांग ललाट पर / मस्तक पर लगावें। पुनः जल से हाथ धो लें। जिससे गंधोदक का स्पर्श अन्य अंग से न हो। अन्य अंग से स्पर्श होने पर उसकी अवमानना का दोष आता है। सर्वांग मे नहीं लगाना चाहिए।

प्रश्न- चरणामृत की भाँति गंधोदक पीना क्यों वर्जित है ?

उत्तर- गंधोक पीने से वह मल-मूत्र में मिल जाता है। जिससे महान पाप का बंध होता है। इसलिए वर्जित है।

प्रश्न- क्या चम्मच से गंधोदक लेना उचित है ?

उत्तर- नहीं। चम्मच से गंधोदक लेने की परम्परा डालना गंधोदक पान करने की परम्परा को प्रारम्भ कर सकता है। अतः चम्मच से गंधोदक नहीं लेना चाहिए।

प्रश्न- लोग गन्दे हाथ डालते हैं जिससे गंधोदक मलिन हो जाता है इसलिए चम्मच से लेना ठीक है ?

उत्तर- नहीं। गंधोदक लगाने की विधि यह है कि पहले हाथ जल से धोइये पश्चात् दो अंगुलियों से लगाइए। मलिन होने का प्रश्न ही नहीं है।

प्रश्न- किसी को शरीर में चर्म रोग हो तो ?

उत्तर- चर्म रोग वालों को गंधोदक लगाने का विधान नहीं है।

प्रश्न- अर्हंतादि की पूजा करने से 'पूजक को क्या लाभ है ?

उत्तर- अर्हंतादि के गुणानुवाद करने से पूजक को अपने गुणों की प्रतीति हो जाती है। इससे अशुभका संवर होता है और पुरुषार्थ सिद्धि में संबल मिलता है।

प्रश्न- पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर फण और बाहुबली की प्रतिमा पर बेल क्यों बनाई जाती है, क्या यह उचित है ?

उत्तर- पार्श्वनाथ को उपसर्ग जयी बताना और बाहुबली को घोर तपस्वी बताना प्रयोजन हो सकता है। किन्तु नवीन प्रतिष्ठाचार्यों को चाहिए कि वे पूर्ण वीतरागी और उपसर्ग आदि रहित प्रतिमा प्रतिष्ठा में लेवें। क्योंकि केवल ज्ञानोपरान्त उपसर्ग आदि नहीं रहते हैं।

प्रश्न- रात्रि में पूजा करने से बहुत लोग पूजा में सम्मिलित हो सकते हैं दिन में सभी लोग व्यापार/नोकरी के लिए बाहर चले जाते हैं ?

उत्तर- नहीं। रात्रि में हिंसा बहुत है अतः रात्रि में पूजा नहीं करना चाहिए। पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्बन्धी क्रियाएँ नहीं की जाती है। रात्रि में जीवों का संचार अधिक होता है। उनकी रक्षा करना असम्भव है। अतः अहिंसा धर्म धारकों को रात्रि में पूजा नहीं करना चाहिए। रात्रि पूजा से पाप बहुत और पुण्य अति अल्प है। धन के लोभी और इन्द्रिय विषयाभिलाषी जनों का ध्यान रखकर रात्रि पूजन करने से अपना ही अहित है। इसी प्रकार बैठकर पूजन अधिक लोग करेंगे ऐसा तर्क कर पूजन की परम्परा को विकृत करना अनुचित है। बैठकर पूजन करने वाले प्रमादी हैं। प्रमादियों का आलम्बन कर बैठ कर पूजन करने की परम्परा चलाना अनुचित है।

प्रश्न- चावलों में स्थापना करना उचित है क्या ?

उत्तर- चावलों में स्थापना करना अनुचित है। यदि पीत तंदुल में स्थापना कर जिनेन्द्र की पूजा की जावे तो फिर वेदी में विराजमान प्रतिष्ठित प्रतिमाओं का कोई औचित्य ही नहीं रहेगा। पंच कल्याणक प्रतिष्ठा आदि कार्य व्यर्थ ठहरेंगे। तथा अकृत्रिम चैत्य, चैत्यालयों का भी कोई महत्व न रहेगा। अतः तंदुल आदि में स्थापना करने का निषेध है।

प्रश्न- तंदुल में स्थापना करने का क्यों निषेध है ?

उत्तर- जिसकी पूजा की जाती है उसके आकार आदि का अवलोकन करना, गुणों का स्मरण करना मुख्य है। चावलों में जिनेन्द्र का आकार आदि नहीं है।

प्रश्न- क्या जिनेन्द्र का चित्र (फोटो) रखकर पूजा की जा सकती है ?

उत्तर- नहीं। तस्वीर/चित्र पूज्य नहीं होता है। प्रतिमा भी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा विधि द्वारा मंत्र संस्कारोपरान्त पूज्य होती है। चित्र में मंत्र संस्कार नहीं है। अतः चित्र पूज्य नहीं होता है।

प्रश्न- जिस स्थान पर मन्दिर न हो ऐसी परिस्थिति में क्या करना चाहिए ?

उत्तर- ऐसी परिस्थिति में श्रुत/जिनवाणी/धर्म ग्रन्थ रखकर उसके सम्मुख पूजा-पाठ कर लेना चाहिए। शास्त्र पूज्य है।

प्रश्न- दीपावली पर्व पर रात्रि में पूजा करना चाहिए अथवा नहीं ?

उत्तर- दीपावली पर्व पर रात्रि में पूजा नहीं करना चाहिए। दीपावली पर्व में महावीर स्वामी का निर्वाण जो प्रातः हुआ। जिसकी पूजा जिनालय में जाकर करते ही हैं। उसी दिन अपराह्न में गौतम स्वामी को केवल ज्ञान हुआ उसकी पूजा सूर्यास्त पूर्व कर लेना चाहिए। रात्रि में करने का प्रसंग ही नहीं है।

प्रश्न- चन्दन आदि से अलंकृत प्रतिमा पूज्य है या नहीं ?

उत्तर- चन्दन आदि से अलंकृत प्रतिमा वीतरागमय न होने से उसमें पूज्यत्व नहीं है। पूज्यत्व मात्र वीतगगता से होता है। "जिन प्रतिमा जिन सारखी कही जिनागम माहिं अंश मात्र दूषण लरगे तो वंदनीक है नाहीं।"

प्रश्न- भगवान की पूजा क्यों करना चाहिए ?

उत्तर- भगवान बनने के लिए भगवान की पूजा करना चाहिए।

प्रश्न- आत्मा स्वभाव से ही भगवन है। फिर बनने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर- आत्मा द्रव्य स्वभाव से भगवान है यह सच है किन्तु पर्याय में भगवान बनने के लिए जिनेन्द्र भगवान की पूजा करनी चाहिए।

प्रश्न- इस काल में पर्याय में भगवान बन ही नहीं सकता अतः पूजा करने का कोई औचित्य नहीं है।

उत्तर- ऐसा नही है। इस काल में भी पर्याय में भगवानत्व भगवान बनना प्रारम्भ होता है। इसलिए प्रारम्भ की अपेक्षा पर्याय में भी भगवानत्व प्रगट होता है। जैसे पाणिग्रहण संस्कार से पूर्व और पति स्वीकार होने पर वह तभी से प्रतिव्रता है। उसी प्रकार जब से शुद्ध आत्मा को पर्याय स्वीकार करती है तभी से वह पर्याय में भगवान है।

प्रश्न- शान्ति हेतु शान्ति विधान क्यों करते हैं ?

उत्तर- जिस प्रकार शान्तिनाथ तीर्थंकर के पश्चात् धर्म की व्युच्छित नहीं हुई है उसी प्रकार लौकिक में हमारे परिणामों में शान्ति की व्युच्छित न हो इसलिए शान्ति हेतु शान्तिनाथ विधान करते हैं।

प्रश्न- प्रतिष्ठा/विधान आदि अनुष्ठानों में नाड़ी लच्छी (कंकण बंधन) क्यों बांधी जाती है।

उत्तर- नाड़ी लच्छी १२ अंगुल लम्बी द्वादशांग का प्रतीक है उसमें २७ धागे हैं जो ६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय ९ पदार्थ और ७ तत्व के प्रतीक है। इसलिए बांधते हैं। पंचवर्ण पंच परमेष्ठी के प्रतीक हैं / समझना चाहिए।

प्रश्न- रविवार को पार्श्वनाथ पूजा क्यों की जाती है ?

उत्तर- पार्श्वनाथ उत्कृष्ट क्षमाधारी हैं। इसलिए और रविवार सप्ताह का प्रथम दिन है। इसलिए क्षमाधारी के स्वरूप आराधना पूर्वक सप्ताह का प्रारम्भ हो। अथवा पार्श्वनाथ प्रभु ने अपने में देश भव तक क्षमा स्थापित बनाए रखा। इसलिए हमा भी निर्वाण प्राप्ति तक क्षमादि धर्म पूर्वक रहें। इसलिए रविवार को पार्श्वनाथ पूजन करते हैं।

प्रश्न- पेन्ट, पजामा, धोती कुर्ता आदि वस्त्र पहन कर धुली द्रव्य से पूजन करना उचित है क्या ?

उत्तर- उचित नहीं है। यह उनके प्रमाद का चिन्ह है। इससे पूजन विधि की परम्परा का लोप होता है।

प्रश्न- शास्त्रों में अष्ट मंगल द्रव्यों से पूजा करने का उल्लेख भी मिलता है। इसका क्या प्रयोजन है ?

उत्तर- पूजा का अर्थ सम्मान भी है। जिनेन्द्र के सम्मुख अष्ट मंगल द्रव्य रखना उनके सम्मान का प्रतीक है। यही अष्ट मंगल द्रव्य से पूजा करने का प्रयोजन मात्र है।

प्रश्न- ठोना में पुष्प क्षेपण करने का क्या औचित्य है ? उसमें क्षेपित द्रव्य पूज्य क्यों माने गए हैं।

उत्तर- मन वचन काय की एकता के प्रतीक स्वरूप थाली से पृथक् पुष्प क्षेपण किए गए। ठोना पूर्व में चौकी से नीचे और थाली के समान ऊँचाई पर रखा गया किन्तु कालान्तर में वह ठोना थाली के पास रखा गया जिससे वह बहुत ऊँचा हो गया। उच्च स्थान देख भोले जीव उसमें पूज्यत्व की कल्पना करने लगे। जो कि अनुचित है।

प्रश्न- अर्घं बोलना चाहिए या अर्घ्यं ?

उत्तर- अर्घ्यं बोलना चाहिए। अर्घ=मूल्यवान बेशकीमती और अर्घ्यं= पूजन में क्षेपण की जाने वाली सामग्री।

प्रश्न- प्रदक्षिणा का अर्थ क्या है एवं तीन प्रदक्षिणा क्यों दी जाती है ?

उत्तर- सम्मानपूर्वक दाईं ओर घूमना। अर्थात् इस प्रकार परिक्रमा लगाना कि दाहिना पार्श्व सदैव उस व्यक्ति की ओर रहे जिसकी परिक्रमा की जा रही है। यह श्रद्धापूर्ण अभिवादन/सम्मान है। यह अभिवादन मन से वचन से और काय से किया जाता है। इस तीन से अभिवादन करने के प्रतीक स्वरूप तीन प्रदक्षिणा दी जाती है।

प्रश्न- स्थापना के समय अवतर-अवतर का क्या अर्थ है ?

उत्तर- अवतर (अव+तृ+अव्) उतार /वीतरागता का स्वरूप अपने हृदय में उतारना/चित्रित करना है। भगवान को बुलाना नहीं अपितु उनके शुद्ध स्वभाव को अपने में चित्रित करना अथवा अपना चैतन्य स्वभाव को उस रूप बनाना है।

प्रश्न- स्वस्ति का क्या अर्थ है ?

उत्तर- स्वस्ति का अर्थ कल्याण है।

प्रश्न- पूजन में इन्द्र और इन्द्राणियों को आमने-सामने खड़े होना चाहिए या एक के पीछे एक ?

उत्तर- भगवान् जिनेन्द्र का पूजन करते समय इन्द्र गण एक पंक्ति में और सामने द्वितीय पंक्ति में इन्द्राणियों को खड़े करना चाहिए।

प्रश्न- पूजन/प्रवचन के मध्य/पश्चात् प्रश्न मंच करना चाहिए या नहीं ?

उत्तर- प्रश्न मंच स्वतंत्र करना चाहिए पूजन/प्रवचन के मध्य और अंत में नहीं। क्योंकि समवशरण में दिव्य ध्वनि खिरने के उपरान्त किसी से यह नहीं पूछा जाता है कि बताओ भगवान की वाणी में क्या खिरा था। अथवा इस विषय में दिव्य ध्वनि में क्या खिरा ? श्रोता अपनी पात्रतानुसार समझ लेता है।

प्रश्न- पूजन करते समय मन क्यों भटकता/नहीं लगता है ? मन लगाने का उपाय क्या है ?

उत्तर- पूजन करते समय में भी उपयोग जिस विषय से रंजित रहता है मन वहाँ लगता है। इसलिए सर्व विषयों का त्याग कर पूजन आदि प्रशस्त कार्य करना चाहिए।

प्रश्न- भरत चक्रवर्ती ने चक्र रत्न की पूजा की इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर- पूजा का अर्थ बहुमान भी होता है। भरत चक्रवर्ती ने चक्ररत्न का बहुमान किया न कि अष्ट द्रव्यों से पूजा की।

प्रश्न- सोलह कारण भावना की पूजा करने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर- सोलह कारण भावना की पूजा नहीं है क्योंकि सोलह कारण भावना आश्रव तत्व है। सोलह कारण भावना के माध्यम से सोलह कारण भावना भाने वाले तीर्थंकरों की पूजा की जाती है।

प्रश्न- अभिषेक छोटे कलश से करना चाहिए या बड़े-बड़े कलश से करना चाहिए।

उत्तर- जिनेन्द्र का अभिषेक छोटे कलशों से करना उचित है। कम जल से अभिषेक करने से गंधोदक कम होगा जो अंगुली और मस्तक

के स्पर्श से शेष बचने पर मन्दिर के शिखर पर सींच कर सुखा दिया जावेगा। अधिक गधोदक होने पर प्रतिदिन सुखाना सम्भव नहीं है।

प्रश्न- घड़े से अभिषेक करने से अविनय क्या है ?

उत्तर- घड़े से अभिषेक करने पर गंधोदक उछल कर बाहर गिरेगा, अभिषेक कर्ता / दर्शकों के पैरों के नीचे आयेगा जिससे उसकी अवमानना का महान दोष उत्पन्न होता है।

प्रश्न- अप्रतिष्ठित प्रतिमाओं को झूला में बैठा कर झुलाना उचित है क्या ?

उत्तर- अप्रतिष्ठित प्रतिमा/स्टेचूओं को झूले में बैठाकर उन्हें जन्म कल्याण की भाँति झुलाना पैसे/रुपये डालना अनुचित है। क्योंकि अप्रतिष्ठित प्रतिमा आदि अपूज्य हैं। अपूज्य में पूज्य की मान्यता अन्यथा श्रद्धान है। यह गृहीत मिथ्यात्व झुलाने वाले के साथ-साथ झूला का आयोजनकर्ता को भी लगाता है। दीक्षा कल्याणक से प्रतिष्ठित होने के उपरान्त झूला में नहीं बैठाया जाता है। मात्र जन्म कल्याणक के उपरान्त अवश्य झूला झुलाया जाता है जो सम्यक् है।

प्रश्न- गर्भ और जन्म कल्याणक को सांस्कृतिक कार्यक्रम के रूप में करना उचित है या अनुचित ?

उत्तर- गर्भ और जन्म कल्याणक को सांस्कृतिक कार्यक्रम के रूप में प्रदर्शित करना सर्वथा अनुचित है। क्योंकि दोनों कल्याणक नाटक नहीं है। प्रतिमा प्रतिष्ठा का अग है। कल्याणक को रामलीला की भाँति प्रदर्शित करने से जिनेन्द्र की अवमानना का दोष लगता है।

प्रश्न- छः आवश्यकों के क्रम का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर- सर्व प्रथम देव पूजा करनी चाहिए। देव पूजन करने वाला ही देव मुद्रा की उपासना करेगा। देव मुद्रा का उपासक ही देव की वाणी

का श्रवण एवं स्वाध्याय करेगा। स्वाध्यायी के हृदय में इन्द्रिय संयम और प्राणी संयम पलेगा। संयम धारण करने से विषय-भोगों की इच्छाओं का निरोध होगा और रत्नत्रय की वृद्धि होगी। रत्नत्रय की वृद्धि रूप तप से दान का भाव जाग्रत होता है।

प्रश्न- भक्ति और पूजा में क्या अन्तर है ?

उत्तर- जिनेन्द्र के गुणों में अनुराग करना भक्ति है और पूजक का उपयोग कार्य परमात्मा से निज कारण परमात्मा में और निज कारण परमात्मा से पुनः कार्य परमात्मा में घड़ी के लोलक की भाँति दोलन करता है वह पूजा है।

प्रश्न- जिनेन्द्र भगवान की पूजन क्या उन्हें प्रसन्न करने के लिए की जाती है ?

उत्तर- उन्हें प्रसन्न करने के लिए उनकी पूजा नहीं की जाती है। क्योंकि जिनेन्द्र भगवान वीतराग हैं उन्हें अपनी पूजा से कोई प्रयोजन नहीं है तथा बैर रहित होने से उन्हें निन्दा से भी कोई प्रयोजन नहीं है। तथापि उनके पवित्र गुणों का स्मरण पापियों के पाप रूप मल से मलिन मन को निर्मल कर देता है।

प्रश्न- जल और चन्दन के स्वतंत्र दो पात्र रखना या एक ही पात्र में क्षेपण करना चाहिए ?

उत्तर- जल और चन्दन एक ही पात्र में क्षेपण करना चाहिए। दो स्वतंत्र पात्र रखने का कोई औचित्य नहीं है। यदि जल और चन्दन स्वतंत्र पात्रों में क्षेपण करेंगे तो अक्षत, पुष्प ... फल अर्घ्य भी क्षेपण करने के लिए स्वतंत्र-स्वतंत्र पात्र रखना पड़ेंगे। जो ठीक नहीं है।

प्रश्न- जिनेन्द्र पूजन करने से लौकिक अनुकूलताओं की पूर्ति होती है ?

उत्तर- लौकिक अनुकूलता का अर्थ है धर्म साधन और आत्म साधन के

अनुकूलता की प्राप्ति।

प्रश्न- क्षीरसागर का जल दुग्धवत् होता है ?

उत्तर- क्षीरसागर का जल दुग्धवत् नहीं जलवत् निर्मल होता है।

प्रश्न- उसे क्षीरसागर क्यों कहते हैं ?

उत्तर- यह नाम निक्षेप है - क्षीर वर द्वीप होता है, क्षीर समुद्र होता है। दूध घी का नहीं। क्षीर सागर का जल जीव जन्तु रहित होता है।

प्रश्न- भगवान जिनेन्द्र की पूजन करने का औचित्य क्या है ?

उत्तर- भगवान जिनेन्द्र की पूजन करने से पूजक को अपनी भूली हुई शक्ति का भान होता है जैसे- एक सिंह अपनी शक्ति को भूलकर गधों के साथ मिट्टी ढोने लगा। एक बार किसी सिंह ने आकर कहा तुम शेर हो तुम्हारा स्वरूप मेरे स्वरूप जैसा ही है। तब वह बोला आप सिंह हैं मैं गधा हूँ क्योंकि आप जंगल में रहते हैं और मैं गधों के साथ मिट्टी ढोता हूँ। तब पुनः सिंह ने कहा कल प्रातः तुम मुझे पुकारना, यदि गधे भाग जाएँ तो तुम अपने को सिंह समझना। प्रातः मिट्टी ढोने गया नदी के उस पार खड़े सिंह को पुकारा फिर क्या ... सभी भाग गए तब उसे समझ में आया कि मैं सिंह हूँ। उसी प्रकार संसार अवस्थित जीव को भगवान समझाते हैं कि मेरे समान तुम्हारा स्वरूप है। तुम भगवान हो पर यह संसारी कहते हैं प्रभु आप भगवान हैं। मैं संसारी हूँ। तब भगवान कहते हैं तुम प्रातः मुझे पुकारना यदि विषय आदि भाग जाएँ तब तो तुम भगवान हो। प्रातः ज्योंहि जिनेन्द्र स्तवन करते हैं विषय विलिन हो जाते हैं। अतः मैं भी भगवान स्वरूप आत्मा हूँ।

पूजा

देव-शास्त्र-गुरु पूजा

(रमेशचन्द्र बांझल)

वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, जिन वाणी सुखकार ।
शुद्धातम साधक दशा, तीन लोक हितकार ।।

ओम् ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ओम् ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ओम् ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु समूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अज्ञान भाव से जन्म मरण, करता अनादि से हूँ आया ।
निज ज्ञान भाव प्रगटाने को, अब शरण आपकी मैं आया ।।
मुनि के मन जैसा जल अर्पित, मैं जन्म मरण का नाश करूँ।
देव-शास्त्र-गुरु आलम्बन से, भव के बंधन का नाश करूं ।।

ओम् ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः ज्ञानावरणीय कर्मविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जग के कल्पित संबंध देख, अंतः स्वभाव नहिं लख पाया ।
निज शुद्ध रूप संवेदन को, अब शरण आपकी मैं आया ।।
शीतल सुगन्ध चंदन अप्रित, संसार ताप का नाश करूँ ।
देव-शास्त्र-गुरु आलम्बन से, भव के बंधन का नाश करूँ ।।

ओम् ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः दर्शनावरणीय कर्मविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

एकत्व ममत्व विभावों से, सुख रूप आत्मा नहिं पाया ।
अक्षय अनंत सुख पाने को, अब शरण आपकी मैं आया ।।
मोती समान तंदुल अप्रित, संसार बीज का नाश करूं ।
देव-शास्त्र-गुरु आलम्बन से, भव के बंधन का नाश करूँ ।।

ओम् ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः मोहनीय कर्मविनाशनाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

तन के बल को अपना माना, निज का बल जान नहीं पाया।
चेतन का बल प्रगटाने को, अब शरण आपकी मैं आया ॥
चम्पा-सा सुमन समर्पित है, हत काम वासना नाश करूं ।
देव-शास्त्र-गुरु आलम्बन से, भव के बंधन का नाश करूँ ॥

ओम् ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः अंतराय कर्मविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्रिय भोगों में मगन हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द नहिं पाया ।
सुख अव्याबाध की प्राप्ति को, अब शरण आपकी मैं आया॥
जग का नैवेद्य समर्पित है, सुख की बाधकता नाश करूं ।
देव-शास्त्र-गुरु आलम्बन से, भव के बंधन का नाश करूँ ॥

ओम् ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः वेदनीय कर्मविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो देह मिली उस रूप हुआ, अपने स्वरूप को नहिं पाया ।
अशरीरी रूप प्रगट करने, अब शरण आपकी मैं आया ॥
मणियों का दीप समर्पित है, शारीरिक रूप विनाश करूं ।
देव-शास्त्र-गुरु आलम्बन से, भव के बंधन का नाश करूँ ॥

ओम् ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः नाम कर्मविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कुल कृत आचार विचारों से, भगवान् समान न बन पाया ।
अक्रिय स्वभाव को प्रगटाने, अब शरण आपकी मैं आया ॥
ये धूप की सुरभि कर अर्पित, असमान भाव का नाश करूं ।
देव-शास्त्र-गुरु आलम्बन से, भव के बंधन का नाश करूँ ॥

ओम् ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः गोत्र कर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

काषायिक परिणति के द्वारा, चारों गतियों में भ्रम आया ।
स्वभाविक पंचम गति पाने, अब शरण आपकी मैं आया ॥
जग के सारे फल अर्पित कर, सांसारिक फल का नाश करूं।
देव-शास्त्र-गुरु आलम्बन से, भव के बंधन का नाश करूँ ॥

ओम् ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः आयु कर्मविनाशनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

पर भावों में न अपना पद, मैं अब तक जान नहीं पाया ।
अपना अबंध पद पाने को, अब शरण आपकी मैं आया ॥
ये अर्घ्य समर्पित करता हूँ, सारे व्यवधान विनाश करूं ।
देव-शास्त्र-गुरु आलम्बन से, भव के बंधन का नाश करूँ ॥

ओम् ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

वीतराग जिनदेव हैं, स्यादवाद जिनवाणी ।
शांति रूप निर्ग्रन्थ गुरु, करे कर्म की हानि ॥

दर्शन ज्ञान वीर्य सुखधारी, निजानंद रस के अधिकारी ।
नित्य निरंज हो अविकारी, सर्व शुद्ध गुण मगलकारी ॥

सकल ज्ञेय के हो तुम ज्ञाता, पर द्रव्यों से कोई न नाता ।
तीन लोक है तुम गुण गाता, मोक्षपुरी के हो तुम दाता ॥

नय प्रमाण से तत्व सिखाया, सबका सत्व स्वतंत्र दिखाया ।
कर्म अचेतन रूप बताया, उसका फल रागादिक आया ॥

विषय कषाय बिना हो स्वामी, पर उपकारी हो जग नामी ।
सकल शुद्ध भावों के स्वामी, ध्याता ध्यान निरंजन नामी ॥

बाहर में उपयोग न जावें, चेतन भाव ज्ञान बन आवें ।
सब आस्रव निरोध हो जावें, निज में ही अक्षय पद पावें ॥

मैं अति निर्मल भाव बनाऊँ, सुधामयी परिणति को पाऊँ ।
चित स्वभाव में चित्त रमाऊँ, बाधा रहित सदा सुख पाऊँ ॥

ओम् ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप को, जो नित भावों से ध्याता ।
सकल मनोरथ पूरे होते, मोक्ष धाम को पा जाता ॥

ओम ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्ध पूजन

रमेशचन्द्र "बांझल"

चित् स्वभाव अनुभूति से प्रगट सिद्ध चिद्रूप ।
निजानंद रस मगन हैं वन्दों सिद्ध सद्रूप ॥

ओम् ह्रीं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ओम् ह्रीं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ओम् ह्रीं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

मैं ज्ञान भाव को बिन समझे, अज्ञान भाव में नित अटका ।
पर में अपनी प्रतीति द्वारा, संसार भवन में ही भटका ॥

मैं ज्ञान स्वभावी हूँ चेतन, निज आत्म जानने हूँ आया ।
स्व ज्ञान अनंत प्रगटाने को, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥

ओम् ह्रीं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने ज्ञानावरणीय कर्म विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जड़ चेतन का सम्बन्ध बना, स्वांगों में नित ही लिप्त रहा ।
अंतः प्रकाश नहिं होने से, स्व को बिन देखे भ्रमित रहा ॥

मैं दर्श स्वभावी हूँ चेतन, चित् दर्शन करने हूँ आया ।
दर्शन अनंत प्रगटाने को, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥

ओम् ह्रीं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने दर्शनावरणीय कर्म विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अपने भावों से विमुख हुआ, तन को ही अपना मान लिया।
उसके हित का नित ध्यान रहा, अपना न कभी श्रद्धान किया॥

मैं सम्यक्त्व स्वभावी हूँ चेतन, समकित सुख पाने हूँ आया।
परमावगाढ़ समकित पाने, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥

ओम् ह्रीं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने मोहनीय कर्म विनाशनाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

जड़ के वैभव की ममता से, भौंरों-सा कमल में वास किया।
अपना बल ज्ञात न होने से, शुद्धात्म सिद्धि में विघ्न किया ॥

मैं वीर्य स्वभावी हूँ चेतन, बलशाली बनने हूँ आया।
अपना अनंत बल प्रगटाने, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥

ओम् ह्रीं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने अन्तराय कर्म विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

साता का वेदन सुख समझा, सुख की प्रतीति नहिं कर पाया।
इंद्रिय भोगों में मगन रहा, स्वाभाविक सुख को नहिं पाया॥

मैं सुखद स्वभावी हूँ चेतन, निज सुख में रमने हूँ आया।
सुख निराबाध की प्राप्ति हेतु, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥

ओम् ह्रीं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने वेदनीय कर्म विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं लोक अलोक प्रमाण मयी, जड़ काया में संकुचित हुआ।
आकार रहित होने पर भी, इन्द्रिय के वश आकार हुआ॥

मैं सूक्ष्म स्वभावी हूँ चेतन, अशरीरी बनने हूँ आया।
सूक्ष्मत्व पूर्ण प्रगटाने को, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥

ओम् ह्रीं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने नाम कर्म विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आचार विचारों से जग में, है ऊँच नीच व्यवहार हुआ।
भावों में सब न समान हुए, भगवान भक्त में भेद हुआ॥

मैं अगुरुलघु स्वभायमय हूँ, निज रूप रमण को हूँ आया।
गुण अगुरुलघु की प्राप्ति हेतु, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥

ओम् ह्रीं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने गोत्र कर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ अशुभ विभावों के द्वारा, संसार भ्रमण का चक्र चला।
परिपूर्ण चरित्र न होने से, भव धारण का ही बंध चला॥

मैं अवगाह स्वभावी हूँ चेतन, परिपूर्ण मुक्ति को हूँ आया।
अवगाहन गुण की प्राप्ति को, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥

ओम् ह्रीं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने आयु कर्म विनाशनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठों कर्मों का फल दुःख रूप, भ्रम से सुख भासित होता है।
अपने वैभव के ज्ञान बिना, पर वैभव में नित सोता है॥

मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण, निज वैभव पाने हूँ आया ।
निज अष्ट गुणों की प्राप्ति को, अब सिद्ध शरण में मैं आया ।।

ओम् ह्रीं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धों के गुण गान से, शिव पथ साधन होय ।
शुद्धात्म के ध्यान से, सहज मोक्ष पद होय ।।

जयमाला

शांत दिगम्बर मुद्रा धारी, नित्य निरंजन हो अविकारी ।
मोक्षमार्ग के हो अधिकारी, तीन जगत के मंगलकारी ।।

शुद्ध भाव में भाव ध्यान लगावें, कर्म घातिया क्षय हो जावे।
दर्शन ज्ञान वीर्य सुख पावे, वीतराग अरहंत कहावे ।।

निर्विकार चैतन्य स्वरूपी, निज अनुभूति मगन चिद्रूपी ।
सहजानंद रसमय सद्रूपी शुद्धात्म हो सिद्ध स्वरूपी ।।

सकल ज्ञेय के हो प्रभु ज्ञाता, फिर भी पर से कोई न नाता ।
तीन लोक है तुम गुण गाता, मोक्षधाम के हो तुम दाता ।।

ज्ञान स्वरूप स्वभाव तुम्हारा, लोक अलोक झलकवे सारा ।
निज अनुभव साक्षात निहारा, अखिल विलोकी दर्शन धारा।।

शुद्ध भाव निज रूप समाया, पूर्ण शुद्ध समकित को पाया ।
निर्मल चेतन भाव बनाया, सहज अनंत वीर्य को पाया ।।

ज्ञानानंद परम रस लीना, निराबाध सुख होय नवीना ।
ज्ञान शरीर अतीन्द्रिय लीना, सूक्ष्मत्व भाव प्रगट है कीना ।।

सदाकाल तुम हो अविकारी, उत्तम अगुरुलघु गुण धारी ।
है प्रकाश सम क्षेत्र प्रसारी, सत्ता भिन्न अवगाहन धारी ।।

दीक्षा क्षण तीर्थंकर भाया, यथा जात निज रूप धराया ।
निज में ही उपयोग जमाया, निजानंद अनुभव रस पाया ।।

सिद्ध स्वभाव सदामन लाओ, अपना आवागमन मिटाओ ।
सहज स्वभाव भावना भाओ, कर्म नशाय सिद्ध पद पाओ ॥

ओम् ह्रीं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अविनाशी अविकार सहज सुख धाम हैं ।
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध जगत अभिराम हैं ॥

ओम् ह्रीं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने पुष्पांजलि निर्वपामीति स्वाहा।

चौबीसी पूजा

सर्व हितंकर भाव से, तीर्थंकर पद पाय ।
दिव्य देशना है खिरी, वन्दो शीश नवाय ॥

ओम् ह्रीं श्री वृषभादिकचौबीस तीर्थंकर समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ओम् ह्रीं श्री वृषभादिकचौबीस तीर्थंकर समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ओम् ह्रीं श्री वृषभादिकचौबीस तीर्थंकर समूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

चाल चौबीसी पूजा

शुद्धात्म विज्ञान विहीन, प्रतिक्षण मरण किया ।
अमृत मय सम्यक् ज्ञान, स्व को अमर किया ॥

पूजों चौबीस जिनेश, मुनिव्रत ग्रहण करूँ ।
प्रगटाऊँ सुधा चिदेश, मोक्षपद प्राप्त करूँ ॥

ओम् ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्यः ज्ञानावरणीय कर्मविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज के संवेद विहीन, जग संताप सहा ।
स्व-का संवेदन भाव, दर्शन शुद्ध महा ॥पू.प्र.

ओम् ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्यः दर्शनावरणीय कर्मविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्यात्व असंयम भाव, भव की वृद्धि करे ।
निज वीतराग परिणाम, स्व में लीन करे ।।पू.प्र.

ओम् ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्यः मोहनीय कर्मविनाशनाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पर आश्रित होते भाव, बल का दमन करे ।
शुद्धात्म स्वरूपी भाव, निज में अचल करे ।।पू.प्र.

ओम् ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्यः अंतराय कर्मविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्रिय के भोग सबाध, हिम सम नाश लिये ।
निज निराबाध परिणाम, सुख बिन बाध लिये ।।पू.प्र.

ओम् ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्यः वेदनीय कर्मविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्रियाकार निजमान, उस मय बना रहा ।
इन्द्रिय अतीत सूक्ष्मत्व, निज में समा रहा ।।पू.प्र.

ओम् ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्यः नाम कर्मविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

परिणाम शुभाशुभ रूप, पद असमान करे ।
शुद्धोपयोग मय भाव, सिद्ध समान करे ।।पू.प्र.

ओम् ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्यः गोत्र कर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

इस भव कानन के बीच, अपद में दुःख सहा ।
अवगाहनत्व आकार, ज्ञान समान रहा ।।पू.प्र.

ओम् ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्यः आयु कर्मविनाशनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सब कर्म महा दुःख रूप, अशुचि पर्याय धरे ।
निज सहजभाव चित धार, संर्वतः शुद्ध करे ।।पू.प्र.

ओम् ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

तीन लोक में पूज्य हो, शिवकारी शिवरूप ।
शिवपुर के उपदेश से, मुनियों के हो भूप ।।

वस्तु स्वरूप ज्ञान में आया, निज हित में ही चित्त समाया।
दर्शन ज्ञान चरित्र को भाया, स्वानुभूति आनंद रस पाया ॥

सहज भाव के गीत सुहाये, शिवकारी शिव पथ में आये।
आत्म शुद्धि का सम्बल पाये, शुद्ध ब्रह्म शिवनाथ कहाये ॥

चौबीस भेद परिग्रह छोड़ा, विषय भाव से मुँह को मोड़ा।
शुद्ध भाव में निज को जोड़ा, पर परिणति से नाता तोड़ा ॥

द्रव्य स्वभाव समान विचारा, पर में से उपयोग उवारा।
निज स्वभाव साधन के द्वारा, कर्म कलंक किया सब न्यारा॥

अनंत चतुष्टय को प्रगटाया, वीतराग अरहंत कहाया।
समवशरण इन्द्रौं ने रचाया, तीन लोक ने तुम गुण गाया ॥

दर्शन आदि आठों गुणधारी, हुये शिवालय के अधिकारी।
पूर्ण शुद्ध तुम हो अविकारी, कहलाते जग के उपकारी ॥

समवसरण शोभा अति पावे, नर पशु देव सभा में आवे।
अक्षर रहित दिव्य ध्वनि होवे, श्रवण मात्र बंधन को खोवे ॥

नय प्रमाण श्रुत ज्ञान बताये, सर्व भाव प्रतिबोध कराये।
जिनवर की स्तुति जो गाये, तत्क्षण कर्म बंध नहीं आये ॥

तीर्थंकर सम भाव बनाऊँ, परमानंद दशा प्रगटाऊँ।
शुद्ध सिद्ध अपना पद पाऊँ, जग में लोट कभी नहीं आऊँ।

ओम् ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौबीसों जिनराज की, महिमा अपरंपार।
भव के भाव अभाव को, शुद्ध धर्म चित धार ॥

ओम् ह्रीं श्रीऋषभादि महावीरान्तेभ्यः पुष्पांजलिं।

विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजन

विद्यमान रहते विदेह में, बीस जिनेश हृदय धरलूँ ।
उनके गुण आराधन करने, मन वच काय शुद्ध कर लूँ ॥
वीतरागमय जिन स्वरूप को, परिणति में अंकित कर लूँ ।
उस परिणति को स्थिर करके, अपने निकट उन्हें कर लूँ ॥

ओम् ह्रीं सीमंधरादि अजित वीर्य पर्यन्त विंशति जिन समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
अत्र मम सन्नि हितो भव भव वषट्।

उपयोग किया पर से विभक्त निज में स्थिरता कर पाऊँ ।
सर्वज्ञेय का ज्ञायक रह कर सर्वज्ञ अवस्था प्रगटाऊँ ॥वि.अ.।

ओम् ह्रीं श्री सीमंधरादि अजित वीर्य पर्यन्त बीस ज्ञानावरण कर्म क्षयाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज का स्वरूप है जिन समान, निज के दर्शन कर पाऊँ ।
द्रव्य भाव का दृष्टा रह कर, स्व संवेदन कर पाऊँ ॥वि.अ.।

ओम ह्रीं श्री सीमंधरादि अजित वीर्य पर्यन्त बीस तीर्थंकरेभ्यो दर्शनावरण कर्म क्षयाय चन्दन निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल श्रद्धा पूर्वक चारित्र, पूर्ण एकता कर पाऊँ ।
सादि अनंत समय तक स्वामी, शाश्वत पद को पा जाऊँ ॥वि.अ.।

ओम् ह्रीं श्री सीमंधरादि अजित वीर्य पर्यन्त बीस तीर्थंकरेभ्यो मोहनीय कर्म क्षयाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

हे अनंत बल धारक चेतन, गुण अनंत में प्रगटाऊँ ।
केवल आदि लब्धियाँ पाकर चित् स्वभाव में रम जाऊँ ॥वि.अ.।

ओम् ह्रीं श्री सीमंधरादि अजित वीर्य पर्यन्त बीस तीर्थंकरेभ्यो अन्तराय कर्म क्षयायै पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

बाधा रहित सहज सुख पाने, सदा अबाधित बन जाऊँ ।
सुख स्वरूप सुखकार आत्म से, चिदानंद रस उप जाऊँ ।।वि.अ.।

ओम् ह्रीं श्री सीमंधरादि अजित वीर्य पर्यन्त बीस तीर्थंकरेभ्यो वेदनीय कर्म क्षयाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

है अशरीर स्वभावी चेतन, आत्म अतीन्द्रिय रह जाऊँ ।
निरालम्ब परिणाम बनाकर, सूक्ष्मता को प्रगटाऊँ ।।वि.अ.।

ओम् ह्रीं श्री सीमंधरादि अजित वीर्य पर्यन्त बीस तीर्थंकरेभ्यो नार्म कर्म क्षयाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

पर आश्रय के भाव छोड़कर, स्व आश्रय को अपनाऊँ ।
निज स्वभाव साधन के द्वारा, अगुरु लघु को प्रगटाऊँ ।।वि.अ.।

ओम् ह्रीं श्री सीमंधरादि अजित वीर्य पर्यन्त बीस तीर्थंकरेभ्यो गौत्र कर्म क्षयाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

नित्य निरंजन निराकर पद, स्वयं सहज ही पा जाऊँ ।
अवगाहन गुण को प्रगटाकर, अपने लोक में बस जाऊँ ।।वि.अ.।

ओम् ह्रीं श्री सीमंधरादि अजित वीर्य पर्यन्त बीस तीर्थंकरेभ्यो आयु कर्म क्षयाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल परमात्म बन करके, निज स्वभाव में रह जाऊँ ।
चिदानंद रस पान करूं नित, अविनाशी पद पा जाऊँ ।।वि.अ.।

ओम् ह्रीं श्री सीमंधरादि अजित वीर्य पर्यन्त बीस तीर्थंकरेभ्यो क्षयाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री जिन के प्रति राग से होवे पुण्य का बंध ।
तत क्षण स्व संवेद से, क्षरे कर्म का बंध ।।

सीमंधर युगमंधर बाहु श्री सुबाहु संजात स्वयंप्रभ ।
ऋषभानन अनंत वीर्य हैं, श्री सूरिप्रभ हैं विशाल प्रभ ।।

श्री वज्रधर चन्द्रानन जिन, चन्द्रबाहु भुजंगम ईश्वर ।
नेमि, वीर, महभद्र, देवयश अजितवीर्य हैं शाश्वत ईश्वर ।।

सोलह कारण जो नर भावे, तीर्थंकर प्रकृति बंध जावे ।
द्वि,त्रि, पंच कल्याणक पावे, तीर्थंकर वह नर कहलावे ॥

अष्टम वर्ष आयु हो जावे, श्रावक के व्रत को अपनावे ।
गृहस्थ पने के भाव नशावे, शिवकारी शिव पथ में आवे ॥

चित स्वरूप भावना भावे, पँच महाव्रत को अपनावे ।
मुक्ति मार्ग नेता कहलावे, भव सागर से तरे तरावे ॥

परम शांत मुद्रा के धारी, भविक जनों को है हितकारी ।
अनंत चतुष्टय तुमने पाये, छयालीस गुण उपचार कहाये ॥

समवशरण शोभा अति पावे, इन्द्रादिक तुमरे गुण गावे ।
भव्य भाग्यवश खिरती वाणी, तीन जगत को है कल्याणी ॥

निश्चय नय भूतार्थ बताया, नय व्यवहार अभूत कहाया ।
स्वभूतार्थ भाव नहिं भावे, संसारी वह जीव कहावे ॥

कर्म रहित स्वभाव पहिचानो, कर्म संयुक्त जीव जग जानो ।
चेतन दर्शन ज्ञान अरूपी, वीतराग चारित्र चिद्रूपी ॥

जितने अंश रत्नत्रय होई, उतने अंश बंध नहिं कोई ।
योग कषाय बंध करवावे, रत्नत्रय इनमें नहिं आवे ।

श्रमण शुद्ध आचार बनावे, श्रावक अंश रूप अपनावे ।
धर्म अहिंसामयी रस पावे, आकुलता बिन सुख उप जावे ॥

जिन पूजन में मुख्यता, शुद्ध आत्म की सिद्धि ।
पूजक आत्म विशुद्धि से, पावे केवल ऋद्धि ॥

ओम् ह्रीं श्री सीमंधरादि अजितवीर्य पर्यंत बीस तीर्थंकरेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्री निर्वाण क्षेत्र पूजा

कैलाश गिरि से आदि जिन, चम्पापुरी से वासु जिन।
गिरनार से श्री नेमी जिन, पावापुरी से वीर जिन ।।
श्री शिखर जी से बीस जिन, निर्वाण पद को पा गए।
संसार देह विरक्त हो, हम मुक्ति पाने आ गए ।।

ओम् ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिर्थंकर निर्वाण क्षेत्र अत्र अवतर अवतर।
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सब गुण में ज्ञान महान्, स्व पर प्रकाश करे।
परमामृत ज्ञान निधान, सब गुण वास करे।
निर्वाण क्षेत्र पर जाय, संयम सकल धरूँ।
निज में उपयोग लगाय, आतम अमल करूँ ।।

ओम् ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यः ज्ञानावरणीय कर्मविनाशनाय जलं निर्वापामीति स्वाहा।

दर्शन गुण ज्ञान समान, आत्म प्रकाश करे।
स्व शुद्ध आत्म संवेद सदा अविकल्प करे ।।नि.नि.

ओम् ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यः दर्शनावरणीय कर्मविनाशनाय चंदनं निर्वापामीति स्वाहा।

समकित मय संयम भाव, चरित्र प्रगट करे।
रागदि रहित परिणाम, उत्तम धर्म धरे ।।नि.नि.

ओम् ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यः मोहनीय कर्मविनाशनाय अक्षतं निर्वापामीति स्वाहा।

नव केवल लब्धि अपार, अविचल वीर्य धरे।
निज का है सहज स्वभाव, बल की वृद्धि करे ।।नि.नि.

ओम् ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यः अंतराय कर्मविनाशनाय पुष्पं निर्वापामीति स्वाहा।

इन्द्रिय अतीत सुख सार, आत्म स्वभाव धरे ।
प्रगटे सुख अव्याबाध, अनुपम अचल करे ।।नि.नि.

ओम् ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यः वेदनीय कर्मविनाशनाय नैवेद्यं निर्वापामीति स्वाहा।

सूक्ष्मत्व स्वभावी आत्म, उसमय सदा रहे ।
प्रगटे अशरीर स्वभाव, बिन व्यवधान रहे ।।नि.नि.

ओम् ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यः नाम कर्मविनाशनाय दीपं निर्वापामीति स्वाहा।

प्रति क्षण चेतन चितरूप, नित परिणमित रहे ।
गुण अगुरुलघु है स्वभाव, सर्व गुण शुद्ध रहे ।।नि.नि.

ओम् ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिर्थंकरेभ्य गौत्र कर्म विनाशनाय धूपं निर्वापामीति स्वाहा।

आतम, चेतन आकार, गुण अवगाह धरे ।
रहना स्वतंत्र निष्काम, शिव सुख रास करे ।।नि.नि.

ओम् ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यः आयु कर्मविनाशनाय फलं निर्वापामीति स्वाहा।

निर्मल हैं आत्म प्रदेश, समरस सुधा मयी ।
निर्वाण महा शिवरूप, सहज आनंद मयी ।।नि.नि.

ओम् ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिर्थंकरेभ्य अर्घ्यं निर्वापामीति स्वाहा।

जयमाला

ग्रहस्थ पने का त्याग कर, मुनि धर्म स्वीकार ।
निज स्वभाव में लीन रह, पाया पद अविकार ।।

जग वैभव नाते सपने हैं, निज से संबंध बनाया है ।
अपना भव भ्रमण मिटाने को, निर्मल परिणाम बनाया है ।।

पंचेन्द्रिय विषयों में नहि सुख, निज में ही निज सुख पाया है ।
संसार देह के भोग त्याग, समतामय भाव बनाया है ।।

जग की असारता को समझा, शुद्धात्म सदा मन भाया है ।
इन्द्रिय अतीत पद पाने को, निज आतम ध्यान लगाया है ।।

जड़मय वैभव से मुख मोड़ा, निज गुण वैभव को पाया है ।
चैतन्य भाव के निर्झर से, सुखमयी सुधा रस पाया है ।।

जगकाय स्वभाव प्रतीति से, मन में वैराग्य समाया है ।
मानव जीवन अति दुर्लभ है, संयम धर सफल बनाया है ।।

सबके ज्ञायक बन जाने से, परिणाम स्वयं ही शुद्ध हुए ।
अन्तर बाहर के संग छोड़, शुद्धपयोग में लीन हुए ।।

शुद्धात्म सुधा आलम्बन से, अप्रमत्त स्वरूपाचरण किया ।
परिणाम अनन्त गुणे विशुद्ध, क्षायक श्रेणी में गमन किया ।।

प्रतिक्षण अपूर्व हों शुद्ध भाव, अनिवृत्ति समाधि में लीन हुए ।
सूक्ष्मसांपराय अभाव भाव, कर क्षीण मोह निर्मोह हुए ।।

ज्ञानादि अनन्त चतुष्टय से, त्रिलोक पूज्य अरहंत हुये ।
जब योग निरोध अयोग हुये, तब सर्व कर्म क्षय सिद्ध हुये ।

दर्शन आदिक गुण आठ धार, नित निजानंद रस पान करें ।
अविकल अविकारी अविनाशी, तनुवातवलय में वास करें ।।

ओम् ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकर सर्वनिर्वाण क्षेत्रेभ्यः अर्घ्यं निर्वापामीति स्वाहा ।

निर्वाण क्षेत्र जिनेशकी, महिमा अपरंपार ।
पुजें मनं वंच काय से, होवे भव से पार ।।

ओम् ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यः पुष्प निर्वापामीति स्वाहा ।

महावीर पूजन

ज्ञानादि से वर्द्धमान हैं, इन्द्रिय विजय से वीर हैं ।
आत्म मति से सन्मति हैं, अकषाय से अति वीर हैं ।।

केवल्य ज्योति प्रधान हैं, कर्माष्ट क्षय महावीर है ।
त्रैलोक पूज्य जिनेश हैं, निज धर्म धारण धीर हैं ।।

ओम् ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र, अत्र अवतर अवतर संवौष्ट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम संन्निहितो भव भव वषट्।

दर्पणतल सम ज्ञान, झलकें ज्ञेय सभी ।
ज्ञेयाकृति ज्ञायक ज्ञान, ज्ञेय न बने कभी ।।

महावीर प्रभु तीर्थेश, मोक्ष निवास करें ।
निर्मल एकाकी चिदेश, आनंद रास करें ।।

ओम् ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय ज्ञानावरण कर्म क्षयाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन चैतन्य प्रकाश, निज संवेद मयी ।
आलोकित हुआ स्वभाव, शुद्ध अभेद मयी ।। म.नि.

ओम् ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय दर्शनावरण कर्म क्षयाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

समकित चारित्री भाव, शुद्ध विकास करें ।
चारित्र होय परिपूर्ण अनंता सुख धरें ।। म.नि.

ओम् ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय मोहनीय कर्म क्षयाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षायिक दानादि भाव, वीर्य अनंत धरें ।
सर्वोत्तम पद आसीन, मोक्ष प्रशस्त करें ।। म.नि.

ओम् ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अन्तराय कर्म क्षयाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सुख अव्याबाध अनूप, सर्व प्रदेश भरे ।
शुद्धात्म चिदानंद भूप उसमें केलि करे । म.नि.

ओम् ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय वेदीय कर्म क्षयाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सूक्ष्मत्व हुआ सर्वात्म, सदा अबाध रहे ।
है निरालम्ब परिणाम, सर्वतः शुद्ध रहे ।। म.नि.

ओम् ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय नाम कर्म क्षयाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगुरु लघुता चैतन्य, काल अनंत रहें ।
भेदादि बिहीन स्वभाव, अक्रिय बने रहें ।। म.नि.

ओम् ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय गोत्रकर्म क्षयाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अवगाही देह समान, किंचित न्यून रहे ।
निर्देह अचल लोकान्त, ज्ञान प्रमाण रहे ।। म.नि.

ओम् ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय आयुकर्म क्षयाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल सर्वात्म प्रदेश, उत्तम धर्म धरे ।
चैतन्य अपूर्व विलास, रस आनंद झरे ।। म.नि.

ओम् ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आषाढ़ शुक्ल की षष्ठमी, छोड़ अच्युत विमान ।
नाथ वंश सिद्धार्थ घर, पाया गर्भ महान ।।

ओम् ह्रीं आषाढ़ शुक्ल षष्ठम्यां गर्भ मंगल शोभिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी, जन्मे श्री वर्द्धमान ।
इन्द्रों ने प्रभु का किया, सहस्राष्ट कलश स्नान ।।

ओम् ह्रीं श्री चैत्र शुक्ल त्रयोदशभ्यां जन्म मंगल शोभिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माघ कृष्ण दसमी दिवस, मुनि धर्म स्वीकार ।
स्वस्थान अप्रमत्त रह, पाया श्रुत का पार ।।

ओम् ह्रीं माग कृष्ण दशम्यां तपोमंगल शोभिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशमी शुक्ल वैशाख की, नशे घातिया कर्म ।
केवल ज्ञानी प्रभु हुए, खिरा धर्म का मर्म ॥

ओम् ह्रीं वैशाख शुक्ल दशम्यां ज्ञानकल्याणक प्राप्ताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कार्तिक कृष्ण अमावर्सा, पाया परम निर्वाण ।
लोक शिखर में जा बसे, हुए सिद्ध भगवान ॥

ओम् ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावश्यां मोक्षमगल मडिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजन योग्य परमात्मा, शुद्ध गुणों के धाम ।
द्रव्य भाव पूजन करे, पावे मुक्ति धाम ॥

मिला पुरुवरा को उपदेश, बदल गया उसका सब भेष ।
अपने हित का किया विचार, निज भावो को लिया सुधार ॥

मारिचि भव में मुनिव्रत धार, शिथिल किया अपना आचार ।
आत्म ज्ञान को नहिं उपजाय, भ्रमे चतुर्गति के दुःख पाय ॥

विश्वनंदी मुनिव्रत को धार, कर निदान खोया सब सार ।
अर्द्धचक्री बन भोगे भोग, व्रतादिक धारे नहिं योग ॥

नरक और तिर्यंच में जाय, क्षुधा मिटाने मृग को खाय ।
चारण ऋद्धि धारि मुनि आय, सम्बोधन से भव बतलाय ॥

सिंह बनाया भाव उदार, अन्त समय में समाधि धार ।
दशवाँ भव तीर्थंकर पाय, कर्म नाश शिवपुर को जाय ॥

द्वादश अनुप्रेक्षा को भाया, प्रखर विरागी भाव बनाया ।
क्षणभर में छोड़ा परिवारा, नमः सिद्ध कह महाव्रत धारा ॥

चित स्वभाव उपयोग समाया, शुद्ध स्वरूपा चरण बढ़ाया ।
निज स्वभाव साधन के द्वारा ,कर्म मैल कीना सब न्यारा ॥

मोहनीय जब कर्म विनाशा, सुख स्वरूप चारित्र प्रकाशा ।
ज्ञानावर्णी क्षय कर दीना, केवलज्ञान प्रगट कर लीना ॥

दर्शन का आवरण हटाया, अन्तः चित प्रकाश प्रगटाया ।
बाधक अन्तराय विनशाया, दानादिक अनंत बल पाया ॥

समवसरण के हो तुम स्वामी, मुक्ति प्रणेता हो जगनामी ।
चार समय में खिरती वाणी, सर्वजगत को है कल्याणी ॥

साम्य स्वरूप भाव है आता, हितकारी वह धर्म कहाता ।
धर्मरूप परिणित जो योगी, होता है वह शुद्धोपयोगी ॥

पुण्य पाप दोनों सम जानो, आश्रवबंध इन्हें पहिचानो ।
कर निरोध आस्रव का ज्ञानी, संचित कर्म झड़ावे ध्यानी ॥

सिद्ध समान जीव सब जानो, राग विराग का अन्तर मानो ।
अन्य नहीं सुखदुःख का दाता, निज भावों का ही फल पाता ॥

योग निरोध अघाति नशाये सूक्ष्मादिक गुण प्रगटाये ।
आत्म स्वरूप सिद्ध पद पाया, मुक्ति ने तुमको अपनाया ॥

कोयल भाँति सुयश जो गावे, निजमें ही उपयोग लगावे ।
पूजक पूज्य भेद नहिं आवे मुक्त दशा का आनंद पावें ॥

ओम् हीं श्री महावीर जिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री नेमिनाथ जिनपूजा

जूनागढ़ सौराष्ट्र में, है गिरनार महान् ।
शुद्धातम का ध्यान धरि, पायौ केवल ज्ञान ।।
अनन्त चतुष्टय के धनि, लीना मैंने जान ।
निज शुद्धातम ध्यावने, हृदय विराजो आन ।।

ओम् ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर।
ओम् ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ओम् ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

मैं जनम मरण का रोगी प्रभु, यह रोग न अब तक मिट पाया।
समकित शीतल जल से प्रभु, रोग मिटाने हूँ आया ।।
नेमिनाथ गिरनार निवासी, तुम गुण चिन्तन मन भाया ।
वीतराग छवि लख प्रतिमा की, पावन लोचन मन काया ।।

ओम् ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युरोग विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव भोगो की लोलुपता से, नित भव का संताप बढ़ाया ।
ले वीतरागता का चन्दन, भव दाह मिटाने हूँ आया ।।ने.वी.

ओम् ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

दुःखमय अथाह भवसागर है यह समझ शरण तेरी आया ।
निज अक्षय ध्रुव का ले आलम्बन, अक्षय पद प्रगटाने आय ।।ने.वी.

ओम् ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

नित काम भाव में ग्रसित रहा, क्षण भर भी निज सुख नहिं पाया।
आतम अनुभव के सुमनो से, यह काम नशाने हूँ आया ।।ने.वी.

ओम् ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं क्षुधा रोग से पीड़ित हूँ जग में नाना व्यंजन खाया ।
अनशन स्वभाव के आश्रय से मैं क्षुधा मिटाने हूँ आया ।।ने.वी.

ओम् ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ द्रव्यों से निज भला जान, पर परिणति से एकत्व किया ।
निज ज्ञान दीप से मोह नाश, मैं स्व-पर भेद करने आया ।।ने.वी.

ओम् ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ-अशुभ भाव की ज्वाला से नित निज स्वभाव को झुलसाया ।
निज आत्म शुद्धि की वृद्धि से, सब कर्म जलाने हूँ आया ।।ने.वी.

ओम् ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ कर्मों का फल विषय भोग, भोगों में नित ही ललचाया ।
निज आत्म स्थिरता का फल ले, निज शिव पद पाने हूँ आया ।।

ओम् ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज भावों का अर्घ्य बनाकर पूजन करने पूजक आया ।
बन सकूँ अतुल सम तुम जैसा मन में यह भाव उमड़ आया ।।ने.वी.

ओम् ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक

कार्तिक शुक्ल षष्ठी दिवस, छोड़ जयंत विमान ।
मात शिवा के गरभ में, आये नेमि महान् ।।

ओम् ह्रीं कार्तिक शुक्ल षष्ठयां गर्भमंगल शोभिताय श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण शुक्ल षष्ठी दिवस, जन्मे नेमिकुमार ।
जीवों को तिहूँ लोक में, आनन्द हुआ अपार ।।

ओम् ह्रीं श्रावण शुक्ल षष्ठयां जन्ममंगल शोभिताय श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण शुक्ल षष्ठी दिवस, सुन पशुअन किलकार ।
यह संसार असार लख लिया महाव्रत धार ।।

ओम् ह्रीं श्रावण शुक्ल षष्ठयां तप मंगल शोभिताय श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अघ्य निर्वपामीति स्वाहा।

अश्विन शुक्ल एकम् दिवस, नाश घातियां चार ।
केवल ज्ञानी प्रभु हुये, खिरी देशना सार ।।

ओम् ह्रीं आश्विन शुक्ल प्रतिपदायां ज्ञान कल्याणक प्राप्ताय श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आषाढ़ शुक्ल सप्तमी दिवस, हुए सिद्ध भगवान ।
आवागमन निवार कर, लिया अचल निज थान ।।

ओम् ह्रीं आषाढ़ शुक्ल सप्तम्यां मोक्षमंगल प्राप्ताय श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

बाल ब्रह्मचारी हुये, नेमि कुँवर मुनिराज ।
कर एकाग्र स्वरूप निज, भये सिद्ध सिरताज ।।
तुम तीन लोक के हो, स्वामी ज्ञाता दृष्टा अन्तर्यामी ।
भव जंग के बंधन तोड़ दिये, तुम हुये निरामय शिवगामी ।।
संयोग भोग के अगणित थे, सब हेय समझ वैराग्य लिया ।
निरंश निरामय लख स्वभाव, संकल्प विकल्प विलीन किया ।।
निज शुद्धात्म चिन्तवन करके, भव के बंधन का नाश किया ।
निज ज्ञानानन्द स्वभावी, बन, अक्षय सुख का व्यपदेश लिया ।।
भव भोग राग की आग त्याग, स्वीकारा है मुनि पद महान् ।
फिर निज स्वभाव साधन द्वारा, तुम प्रगट किया केवल्यज्ञान ।।
जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तुम हो अनंत गुणमय अपार ।
अष्टादश दोष रहित जिनवर, स्व चतुष्टयमय राजत सु सार ।।
तुमको लख कर है अभिलाषा, मैं भी स्वरूप का ध्यान धरूँ ।
परमातज निज पद पाने को, तत्वार्थ स्वरूप श्रद्धान करूँ ।।

सोरठा

नरभव पा पुरुषार्थ कर मुनि धर्म स्वीकार ।
आधि-व्याधि मिटे सभी होवे भव से पार ।।

ओम् ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

परमात्म पूजन

सौभाग्य मुझे कब मिल पाये, सन्निकट आपके आ जाऊँ ।
प्रभु शांति प्रदायक परमातम, शीतल मन में प्रभु पधराऊँ ॥

ओम् ह्रीं श्रीपरमात्मसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ओम् ह्रीं श्रीपरमात्मसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ओम् ह्रीं श्रीपरमात्मसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

नित जन्म मरण का रोग रहा, अब तक नहिं इसे मिटा पाया।
प्रभु रोग निवारक तुम्हें जान, मैं औषधि लेने हूँ आया ॥

क्षीरोदधि का जल क्षेपण कर, मैं जन्म मरण का नाश करूँ ।
मैं शरण आपकी आया हूँ, भवसागर को अब पार करूँ ॥

ओम् ह्रीं श्रीपरमात्मेभ्यः ज्ञानावरणीय कर्मविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव चाह दाह बढ़ जाने से, अगणित दुःख मैंने पाये हैं ।
पर चाह दाह नहिं मिट पायी, पर के गीतों को गाये हैं ॥

मलयागिरि चंदन क्षेपण कर, संसार ताप का नाश करूँ ।
मैं शरण आपकी आया हूँ, भवसागर को अब पार करूँ ॥

ओम् ह्रीं श्रीपरमात्मेभ्यः दर्शनावरणीय कर्मविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

संसार मोह का सागर है, यह नरभव नाव भटकती है ।
संकल्प विकल्प, की लहरों में, मम आतम शक्ति अटकती है ॥

ये उज्ज्वल अक्षत क्षेपण कर, निज अक्षय पद को प्राप्त करूँ ।
मैं शरण आपकी आया हूँ, भवसागर को अब पार करूँ ॥

ओम् ह्रीं श्रीपरमात्मेभ्यः मोहनीय कर्मविनाशनाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कामादिक विष को पीने से, सुख सुधा पान नहिं कर पाया ।
हत काम वासना से बचने, घबरा कर चरणों में आया ॥

ये कुसुम सुकोमल क्षेपण कर, निष्काम अवस्था प्राप्त करूँ ।
मैं शरण आपकी आया हूँ, भवसागर को अब पार करूँ ॥

ओम् ह्रीं श्रीपरमात्मेभ्यः अंतराय कर्मविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं क्षुधा रोग से ग्रसित रहा, चारों गतियों में भ्रम आया ।
षट् रस के सेवन करने से, संतृप्त क्षुधा नहिं कर पाया ॥

नैवेद्य सुव्यंजन क्षेपण कर, मैं क्षुधा रोग का नाश करूँ ।
मैं शरण आपकी आया हूँ, भवसागर को अब पार करूँ ॥

आम ह्रीं श्रीपरमात्मेभ्य: वेदनीय कर्मविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्ध नशे में चूर हुआ, आपापर को नहिं पहचाना ।
मिथ्यात्व महातम में पड़ कर, मुक्ति का मार्ग नहीं जाना ॥

गह दीप निक्षेपण करके प्रभु, अंतर में ज्ञान प्रकाश करूँ ।
मैं शरण आपकी आया हूँ, भवसागर को अब पार करूँ ॥

ओम् ह्रीं श्रीपरमात्मेभ्यः नाम कर्मविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मों की ज्वाला में पड़कर, चैतन्य भाव है झुलस रहा ।
निःसहाय अवस्था होने से, भव बधन में ही उलझ रहा ॥

ये धूप अनल में क्षेपण कर, कर्मों से आत्म स्वतंत्र करूँ ।
मैं शरण आपकी आया हूँ, भवसागर को अब पार करूँ ॥

ओम् ह्रीं श्रीपरमात्मेभ्यः गोत्र कर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मानुसार सब लौकिक फल, मैंने अनादि से भोगे हैं ।
विषयों में तनमय हो करके, रागादिक भाव संजोये हैं ॥

छह ऋतु के सब फल क्षेपण कर, निर्वाण महाफल प्राप्त करूं।
मैं शरण आपकी आया हूँ, भवसागर को अब पार करूँ ॥

ओम् ह्रीं श्रीपरमात्मेभ्यः आयु कर्मविनाशनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल वसु द्रव्य मिला करके, यह अर्घ्य बनाया है प्रभुवर।
बन सकूँ अतुल मैं तुम जैसा, यह करूँ भावना हे जिनवर ॥

यह अर्घ्य निक्षेपण करके प्रभु, अक्षय अनर्घ पद प्राप्त करूँ ।
मैं शरण आपकी आया हूँ, भवसागर को अब पार करूँ ।।

ओम् ह्रीं श्रीपरमात्मेभ्यः अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीन भुवन के जीव को वीतराग है सार ।
परमातम पद ध्याइये होवे मंगलाचार ।।

तुम तीन लोक के हो स्वामी, ज्ञाता दृष्टा अन्तर्यामी ।
जग की बाधाएँ छूट गई, तुम हुये निरामय शिवगामी ।।

संयोग भोग के अगणित थे, सब हेय समझ वैराग्य लिया ।
अक्षय अखण्ड सुख प्राप्ति को, पर से ममता का त्याग किया।।

आपा पर का कर भेद ज्ञान, निज निजानंद रस पान किया ।
संकल्प विकल्प जला करके, अक्षय सुख का व्यपदेश लिया।।

हो गये सर्वत्र वीतरागी, परमातम पद को प्राप्त किया ।
तुम को लखकर है अभिलाषा, मैं भी स्वरूप का ध्यान धरूँ।।
परमातम पद की प्राप्ति हेतु, शुद्धात्म भाव में रमण करूँ ।।

ओम् ह्रीं श्रीपरमात्मसमूह पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजन के नित करन से, विषयासक्ति हो मंद ।
आपा पर के भेद हो, नाशे चतुर्गति फंद ।।

सन्दर्भ सूची

१ जे त्रिभुवन में जीव अनंत सुख चाहें दुःखतें भयवंत । छहढाला

२ आतम को हित है सुख सो सुख, आकुलता बिन कहिए । आकुलता शिव माहिं न तातें, शिवमग लाग्यौ चहिए ।

३ जिन पुङ्गव प्रवचने मुनीश्वराणां यदमुक्तमाचरणम् ।
सुनिरुप्य निजां पदवीं शक्तिं च निषेव्यमेतदपि ॥ २०१ पुसिउ

४ यागो यज्ञः क्रतुः पूजा, सपर्येज्याध्वरो मखः ।
मह इत्यापि पर्याय वचनान्यर्चनाविधे ॥ ६७/१९३ मु.पु.

५ अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेष्ठी ।
ते वि हु चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरण ॥ १०४ मो.पा.

६ जैन धर्म पृ. ११५ प. कैलाशचंदजी शास्त्री ।

७ नंदीश्वर सुर जाइलेय वसु द्रव्य । (नंदीश्वर पूजन)

८ बो.पा.टी. १७/८५ सर्वां पूजां च विनयं वात्सल्यम्
तस्य य करइ पणामं सव्वं पुज्जं च विणयवच्छलं ।
जस्स य दंसण णाणं अत्थि धुवं चेयणा भावो ॥ १७ बो.पा.
टीका- जिन बिम्बस्थ जिन बिम्ब मूर्ते रा चार्यस्थ प्रमाणं पूजा द्रव्यैश्च पूजन कुरुत यूयं ।

९ भू.आ.

१० पूजामप्यर्हतां कुर्याद्यद्वा प्रतिमासु तद्धिया ।
स्वर व्यञ्जनाति संस्थाप्य सिद्धान्प्यर्चयेत्सुधी : ७३२
सूर्युयाध्यायसाधूनां पुरुस्तत्पादयोः स्तुतिम् ।
प्राग्विधायाष्टधा पूजां विदध्यात् स त्रिशुद्धितः ॥ ७३३ प.उ.

११ सहज स्वभाव शुद्ध लख अपना जाऊँगा अब भय से पार । पूजा

१२ मेरे न चाह कछु और ईश रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश । देवस्तुति

१३ वंदे तद्गुण लबधये । त.सू. मंगलाचरण

१४ अस्मिन ज्वलधविमलकेवल बोधवह्नौ ।
पुण्यं समग्रमहमेकमनाजुहोमि ।

१४ए पूर्व मध्य अपरह्न की बेला पूर्वाचार्यों के अनुसार ।
देव वंदना करूँ भाव से सकल कर्म की नाशनहार ॥
पंच महागुरू भक्ति करके, कायोत्सर्ग करूँ सुखकार
सहज स्वभाव शुद्ध लख अपना, जाऊँगा मैं अब भव पार ॥

१४बी अरहंत सिद्ध चे दियपवयणगणजाणभत्तिसंपण्णो ।
बंधदि पुण्णं बहुसो ण हु सो कम्मक्खयं कुणदि ॥११६ पं.काय

१५ कार्तिकेयानुप्रेक्षा मंगलाचरण का भावार्थ ।

१६ दोषो रागादिसद्भावः स्यादावरणकर्म तत् ।
तयोरभावोऽस्ति निःशेषोयत्रासौ देव उच्यते । ६०३
अस्त्यत्र केवलं ज्ञानं क्षायिकं दर्शनं सुखम्
वीर्यं चेति सुविख्यातं स्यादनन्त चुष्टयम् ॥ ६०४ प.उ.

१७ एको यथा सद्द्रव्यार्थात्सिद्धे : शुद्धात्म लब्धितः ।
अर्हन्निति च सिद्धश्च पर्यायार्थाद्द्विधा मतः ॥ ६०६ प.उ.

१८ जिन सहस्त्र नाम आशाधरजी

१९ अरिहंतिणमोक्कारं अरिहा पूजा सुरुत्तमालोए मू.आ.मू. ५०५

२० अरिहंति वंदण्णणमसणाणि अरिहंति पूय सक्कारं ।
अरिहंति सिद्धिगमणं अरिहंता तेण उच्चंति ॥ ५६२ मू.आ.मू.

२१ मो.मा.प्र. पृ ४

२२ तस्स मुहग्गदवयणं पुव्वावरदोस विरहिय सुद्धं ।
आगममिदि परिकहियं तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था ॥ ८ नि.सा.मू.

२३ आपतोपज्ञमनुलघ्य मदृष्टेष्ट विरोधकम् ।
तत्वोपदेशकृते सार्व शास्त्रं कापथ घट्टनं ॥ ९ ॥ र.क.श्रा

२४ आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानभागमः ॥ ९५ परीक्षामुख प.मु. ३/९५

२५ वीतराग सर्वज्ञ प्रणीतषड्द्रव्यादि
सम्यक्श्रद्धानज्ञानव्रताद्यनुष्ठानभेदरत्नत्रयस्वरूपं यत्र प्रतिपाद्यते तदागमशास्त्रं भण्यते । प.का.ता.वृ. १७३/२५५

२६ शब्द प्रमाणं श्रतमेव । त.रा.वा. १/२०

२७ देवासुरिन्दमहिय अणंतसुहपिंड मोक्खफल पउरं ।
कम्ममल पडदलाणं पुण्ण पवित्तं सिवं भद्दं ॥ ८०
पुव्वंगभेदभिण्णं अणंत अत्थेहिं सजुदं दिव्व ।
णिच्चं कलिकलुसहरं णिकाचिदमणुत्तरं विमलं ॥ ८१
संदेहतिमिरदलणं बहुविहगुणजुत्तं सग्गसोवाणं ॥
मोक्खग्गदारभूदं णिम्मलबुद्धिसंदोहं
सव्वण्णुहूमुहविणिग्गय पुव्वावरदोसरहित परिशुद्धं ।
अक्खयमणादिणिहणं सुदणाणपमाणं णिद्दट्ठं ॥ ८३ जम्ब. पण्मत्ति

२८ बालग्गकोडिमेत्तं परिगहगहणं ण होइ साहूणं ।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि ॥ १७ प.द्य ३

२९ मार्गो मोक्षस्य चारित्र तत्सदृगभक्तिपुरःसरम् ।
साधयत्यात्मसि द्धयर्थं साधुरन्वर्थसंज्ञकः ॥ ६६७ प.ध.उ. वृ.द्र.स. ५४

३० वैराग्यस्थ परां काष्ठामधिरुढोधिकप्रभः ।
दिगम्बरो यथाजातरूपधारी दयापरः ६७१ प. ध ३

३१ विषयाषावशातीतो निरारम्भोऽ परिग्रहः ।
ज्ञान ध्यान तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥ १० र.क.श्रा.

३२ सीहगय वसह मिय पशु मारुद सूरुवहिमंदिरदुमणि ।
रिवदि उरगंबर सरिसा परगपथ विमग्गया साहू ॥ ३३ ध १,१,१,१

३३ देवशास्त्र गुरु का स्वरूप- डा. देवेंद्र कुमार

३४ सपरा जंगम देहा दंसण णाणेण शुद्ध चरणाणं ।
णिग्गंथवीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा ॥ १० बो.पा.

३५ जं चरदि शुद्ध चरणं जाणइ पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं ।
सो होई वंदणीया णिग्गंथा संजदा पणिमा ॥ ११ बो.पा

३६ चैत्य भक्ति आ. कुन्दकुन्द

३७ आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावाद हृदयः ।
शास्त्रग्राही भवति सततं वैरिणयश्चशक्यः ॥
सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभगस्तवं न शक्यः परेषां,
तत्किं भूषवसनकुसुमैं किं च शास्त्रैरुदस्त्रै ॥ १९ एकीभाव स्तोत्र

३८ णिज्जिय दोसं देवं सव्वजिवाणं दयावरं धम्मं ।
वज्जियगंथं च गुरूं जो मण्णदि सोहु सद्दिट्ठी ॥ का.अ.मू. ३१७

३९ जिनपूजा जिन मंदिर पृ. ७

४० बो.पा. २५

४१ का.अ. ४८७

४२ त.रा.वा. ६/१३

४३ दानं चेति गृहस्थानां ... ४०३ प.प.वि.

४४ सर्व पर्व में बडो अठाई पर्व है ।
नंदीश्वर सुर जाह लेख वसु दर्व है ॥
हमें शक्ति सो नाहिं यहाँ करि स्थापना ।
पूजों जिन गृह प्रतिमा है हित आपना ॥ न.पू.

४५ इन्द्रादिक पद नहिं चाहूँ विषयनि मे नाहि लुभाऊ ।

रागादिक दोह हरीजे परमातम निज पद दीजे ।।दे.स्तु.

४६ प्रातः रुत्थाय कर्त्तव्यं देवता गुरुदर्शनम् ।
भक्त्यातद् वन्दना कार्यों, धर्म श्रुतिरूपास कै।।६/१६ प.प.वि.

४७ मिथ्यात्व रागोदिसमस्त विकल्प जाल परिहरेण । स्व. स्वरूप अनुष्ठानम् ।। वृ.द्र.स.

४८ द्रव्यस्य सिद्धौ चरणस्यसिद्धिः
द्रव्यस्य सिद्धिश्चरणास्य सिद्धौ ।
बुद्ध्वेति कर्माविरताः परेऽपि,
द्रव्याविरुद्धं चरणं चरंतु ।। प्र.सा.च.चू. १३

४९ पै जिन प्रयोजन सिद्धि की तुम नाम में ही शक्ति है । अ.पा.

५० यह चित्त में सरधात यातें नाम में ही भक्ति है । अ.पा.

५१ पूर्व मध्य अपरान्ह की वेला पूर्वा चार्यों के अनुसार

५२ मो.मा.प्र.अ. ६, र.क.श्रा. ११९ ता.स. ६

५३ इह विधि ठाड़ो होय कर प्रथम पढ़ै जो पाठ वि.पा.

५४ य.ति.च.

५५ कर्मप्रबंधनिगडैरपि............. नयार्थततत्वम् ।।आमा.अ. पा.

५६ जिन पूजा/जिन मंदिर पृ. १७

५७ सर्वार्थ सिद्धि, तत्वार्थराजवार्तिक ७/२९

५८ पुनि श्रृंगार प्रमुख आचार सवै करे । (मं.पा.)

५९ त्वन्मूर्तिशुद्धभिषेक विधिं करिष्ये । आ.ना.अ.पा.

६० स.सि. ३१ टीका

६१ प.का.ता.वृ १, २ ४ टीका

६२ द्र.स.टी. ३६

६३ मण मिलियड परमेसरहँ परमेसरु विमणस्स ।। १/१२३ प.प्र.

६४ यः परमात्मा स एवाहं यऽहं स परमस्ततः ।
अहमेव मयोपास्य नान्यः कश्चिदति स्थितः ।।३१।। स.श.

६५ अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहू पंच परमेट्ठी ।
ते वि हु चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं ।।१०४ मो. पा.

६६ पूजा द्विप्रकारा द्रव्य पूजा भाय पूजा चेति ।। ४७/१५९ भ.आ.वि.

६७ द्रव्यस्थ शुद्धिमधिगम्य यथानुरुपं ।
भावस्य शुद्धिमधिकाम धिगन्तुकामः ।।

आलम्बनानि विवधान्यवलम्व्य वल्गन।
भूतार्थ यज्ञ पुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥ पू.प्र.

६८ जिन पूजा/ जिन मंदिर पृ. १५

६९ सिद्ध चक्र विधान

७० अष्टांग हृदय। अ. ५ श्लो. १

७१ तोयपूर्ण... दृष्टिषु प्रसीदति। अ. १ श्लो. १४ राजबल्भ निघंटु

७२ पाद- दृष्टि प्रसादनम् अ २/२६ रा.नि.

७३ क्लेद शीतलं.... तष्णाघ्न शरीरेन्द्रिय तर्पणम्। २/६९

७४ त्रिदोषघ्न...। .... मेघ्यं .... ॥ २/७२ ११३

७५ लघु तष्णाघ्नं बल्यं ...... ॥२/९४ ११३

७६ हिमवत्प्रभवायश्चजलं तास्वभतोपभम ॥२/१०२, ११३

७७ दाह विनाशनम् २/१०५ ११३

७८ पानीय प्राणिनां प्राणास्तदात्त हि जीवनम्
तस्मात्सर्वस्वयस्थासु कैश्चिद्वारि न वार्यते २/१२१, ११३

७९ मृग मित्र भोजन तपमयी विज्ञान निर्मलनीर
ते साधु मेरे उर वशो मेरी हरहु पातक पीर ॥गुरु स्तुति

८० यदि यावागंगा.... वृहज्ज्ञानांभोभिः। महावीराष्टक

८१ ज्ञान पयोनिधि माहिरली बहुभंग ।जि. स्तु.

८२ ज्ञान समान न आन जगत् में सुख को कारन।
यह परमामृत जन्म जरा मृतु दोष निवारन ॥ छहढाला

८३ गोम्मटसार कर्मकाण्ड गा. १६

८४ भाव प्रकाश निघंटु

८५ जिन पूजा / जिन मंदिर स्वयं भू स्तोत्र १०

८६ तीन लोक के जीव, पाप आताप सताये।
तिनको साता दाता शीतल वचन सुहाये। सीमंधर पूजा

८७ भा.प्र. निघंटु

८८ आपरूप में रुचि सम्यक्त्व भला है।

८९ त्रिदोषघ्नं .... शुद्धं तृष्णाश्च बलकृतस्वर्यो ।५/३ ११/३

९० भाव प्रकाश निघंटु

९१ स.सि. ८/१३

९२ स.सि.

९३ स.सि.

९४ स.सि.

९५ इदमावश्यकषट् समतास्तवन वंदना प्रतिक्रमणम् ।
प्रत्याख्यानं वपुषे व्युत्सर्गश्चेति कर्त्तव्यम् ॥२०१ पु.सि.उ.

९६ र.क.श्रा. ३४, मो.पा. ८६

९७ द्र. सं.टी. ३५

९८ निरखत जिन चंद्रवदन स्वपद स्वरुचि आई
प्रगटी निज आन की पिछान ज्ञान भानु की ॥
कला उद्योत होत काम यामिनी पलाई ॥

९९ जय परम शान्त मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेतु । दे.स्तु.

१०० तुम गुण चिंतत निज पर विवेक
प्रगटें विघटें आपद अनेक । दे.स्तु.

१०१ श्लो.वा.पु. ३ अ. १ सू. ३

१०२ मो.मा.प्र.पृ. ६

१०३ ध. ११

१०४ स.सि. ६/५

१०५ तेहिं कारणेहिं पढमसम्मत मुप्पादेंति...
जिण विम्बदट्ठूणं ।३० जीवटठाणा

१०६ स्फुटं मूर्तियस्य प्रशमितमयीवात विमला । महावीराष्टक

१०७ तपसा निर्जरा च त.सू.

१०८ स्वाध्यायः परमम तपः

१०९ नास्ति सर्वोऽपि संबंधः स.सा.क.

११० मम स्वरूप है सिद्ध समान
वे विराग यहां राग विद्वान ॥आ.की.

१११ मो.मा.प्र. ७

११२ त्वाद्वसामादृसाश्चैव-सर्वेते जिन भक्तितः प.पु.

११३ दे.शा.गु. पूजा

११४ वि.वी.ती. पूजा

११५ परमात्म पूजा

११६ सिद्ध पूजा

११६ब प.प्र.टी. २/५५

११७ चा पा.टी. ८

११८ जिण परिणयभावो च पापपणासओ । ९/१ धवला

११९ विणयं पंच .... मुक्तिन पावंति ॥ १०४ भा.पा.मू.

१२० व.न.श्रा. ३३४

१२१ म.अ.मू. १२९ से १३१ तक

१२२ अ.ध. ७/६२

१२३ अ.आ. १२८

१२४ जिणमुद्दं सिद्ध सुहं हवेइ णियमेण जिणवरु द्दिटंठ
सिविणे वि ण रूच्चइ पुण जीवा अच्छंति भव गहणे । मो.पा. ४७

१२५ व.न.श्रा. ४९३

१२६ जिन पूजा/जिन मंदिर पृ. ७

१२७ यह संसार अपार महासागर दुःख स्वामी ।
ताते तारै बड़ी भक्ति नौका जगनामी ॥

१२८ विघ्नाः प्रणाश्यन्ति भयं न जातु न दुष्ट देवाः परिलधयन्ति
अर्थान्थेष्टाश्च सदा लभन्ते, जिनोत्मानां परिकीर्तनेन । जीवट्ठाण १,१,१,२१
प. ४१

१२९ दर्शनेन जिनेन्द्राणां पापसंघात कुंजरम ।
शतधा भेद भायाति गिरिर्वज्र हतो यथा ॥ ध. ६/१, ९९. २२, गा १/४२८

१३० पूजन के नित करन से विषयासक्ति हो मंद
आपा पर का भेद हो नासे चतुर्गति फंद ।।प.पू.

१३१ अरहंत णमोक्कारो संपहियबधदो असंखेज्ज गुण कम्मक्खय कारओत्ति ।
क.पा. १/१/९२

१३२ जिणवर चरणं बुरुहं णमंति जे परमभक्तिरायेण ।

१३३ ते जम्मवेलिमूलं खणंति वरभावसत्थेण । १५३ ॥ भा.पा.
नाम मात्र कथया परात्मनो अपर जन्म कृत पाप संक्षयः ।१०/४२ प.वि.

१३४ भ.आ.मू. ७४६ से ७५० तक
पश्यन्ति जिनं भक्त्या पूजयन्ति स्तुवन्ति ये ।
ते दृश्चाश्च पूज्याश्च स्तुत्याश्च भुवनत्रये ।।प.वि. ६/१४

१३५ पावन मेरे नयन भये तुम दसवतें, पावन पाणिभये तुम चरणण परसते
पावन रसना मानि तुम गुण गानतें,
पावन मन ह्वै गयो तिहारे ध्यानतें ।
पावन भई पर्याय मेरी भयौ मैं पूर्ण धनी ।अ.पा.हि.

१३६ पदनचरित १४/२१३

१३७ थो जिनेन्द्रं न पश्यन्ति पूज्यन्ति स्तुवन्ति न
निष्पलं जीवितं तेषां धिक च गृहाश्रमम् ॥६/१५ प.वि.

१३८ प.प्र. १/६८

१३८ब दाणं ण दिण्णउ मुनि वरहं ण वि पुज्झइ जिण णाहु ।
पच ण वदिय परम गुरु किम हो सह सवि लाहु ॥१/१९१ प.प्र.

१३९ उच्चारिऊण णाम उरुहाईणं विसुद्धदेसम्मि ।
पुप्फाणि जं खिविज्जंति वण्णिया णामपूयसा ।३८२ व.न. श्रा.

१४० र.क.श्रा. पृ. २०८

१४१ स.सि. रा.वा.

१४२ जीर्णोद्धार प्रतिष्ठा .... नि.सा.मू.

१४३ नियमसार मू. १२१

१४४ रा.वा. ६/२८

१४५ यो. ५/५२

१४६ का.अ.मू. ४६७, ४६८

१४७ नि.सा.ता.वृ. ७०

१४८ मू.आ.गा. ६५०

१४९ अ.धर्मा. ९/२३

संदर्भ ग्रन्थ सूची

अभिषेक पाठ
आ. माघनंदी/हरजसराय कृत
अनगार धर्मामृत
आत्म कीर्तन
एकीभाव स्तोत्र
कषाय पाहुड़
कार्तिकेयानु प्रेक्षा
गुरु स्तुति
गोम्मटसार जी. क.का.
चारित्र पाहुड़
चैत्य भक्ति
जिनपूजा/जिन मन्दिर
जिनवाणी स्तुति
जैन धर्म - प.कैलाशचन्दजी
जीवट्ठाण
तत्वार्थ सूत्र
तिललोय पण्णत्ति
दशलक्षण पूजा
देवस्तुति
देवशास्त्र गुरु पूजा
देवशास्त्र गुरु का स्वरूप
धवल
नंदीश्वर पूजा
नियमसार
नियमसार तात्पर्य वृत्ति
पंचास्तिकाय संग्रह
पंचाध्यायी पूर्वार्द्ध/उतरार्ध
पद्म चरित
पद्म पुराण
पद्म नंदी पंच विंशति का
परमात्मा पूजन
परमात्म प्रकाश
पुरुषार्थ सिद्धि उपाय
पूजा प्रस्तावना समापन
बोध पाहुड
भगवति आराधना
भगवति आराधना विशेष
भाव पाहुड
मंगल पाठ
महावीराष्टक
महापुराण
मूलाचार
मोक्ष पाहुड़
मोक्ष मार्ग प्रकाशक
यशस्तिलक चम्पू
योगसार
रत्नकरण्ड श्रावकाचार
राजवार्तिक
वसुनंदी श्रावकाचार
वृहद द्रव्य संग्रह
विनय पाठ
विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजा
समाधिशतक
समयसार कलश
सर्वार्थसिद्धि
सागार धर्मामृत
सिद्धचक्र मण्डल विधान
सिद्ध पूजा
सीमंधर पूजा
स्वयंभू स्तोत्र
भाव प्रकाश/राजवल्लभ निघंटु